
50
8



उन दिनों ब्रह्मदत्त काशी का राजा था। उनके यहाँ, पिङ्गल नाम का एक पुरोहित था। उसका रङ्ग पीला, सिर गञ्जा और मुँह पोपला था।

बोधिसत्व, पिङ्गल का शिष्य बनकर उनके पास पढ़ा-लिखा करते थे। तब उनका नाम था तकारिया।

राज पुरोहित पिङ्गल का एक साला था। उसकी शक्ल-सूरत भी पिङ्गल से मिलती-जुलती थी। वही रङ्ग, वही गञ्जा सिर, वही पोपला मुख। उन दोनों की आपस में न बनती थी। पिङ्गल ने अपने साले का बहुत तरह से नुकसान करना चाहा, पर वह सफल न हुआ।

आखिर पिङ्गल ने अपने साले को मारने के लिए एक चाल सोची। उसने राजा के पास जाकर कहा- "महाराजा! काशी नगर भारत देश में सबसे उत्तम नगर है। आप राजाओं में उत्तम राजा हैं। इसलिए हमारे किले के निर्माण में किसी प्रकार की कमी नहीं होनी चाहिये। क़िले के दक्षिण द्वार के बनाने में गलती हुई है। यह हमारे लिये हानिकर है। हमारा इसके कारण अपयश भी होगा। उस गलती को तुरन्त ठीक कर लेना चाहिये, यह मेरा निवेदन है।

"उसके लिए हमें क्या करना होगा?" राजा ने पिङ्गल से पूछा।

उस द्वार को पहले तोड़ना होगा। फिर शुभप्रद लकड़ी लाकर दूसरा दरवाजा बनवाना होगा। तदनन्तर नगर की देवी- देवताओं को बलि देकर, शुभ-मुहूर्त पर नये दरवाज़े को स्थापित करना होगा।" पिङ्गल ने राजा को सलाह दी।



"पीले रङ्ग के, गञ्जे सिर, पोपले मुख वाले एक ब्राह्मण की बलि देनी होगी। महाराज! इस द्वार की रक्षा करनेवाली, जो महाशक्तियाँ हैं, वे ब्राह्मण की बलि ही चाहती हैं। दूसरे की नहीं। उस ब्राह्मण को यही गढ़े में दाब देना होगा और उस पर द्वार को लगाना होगा।" पिङ्गल ने कहा।

अच्छा, तो ऐसे ब्राह्मण की खोज करवाइये, और द्वार लगवाइये।" राजा ने कहा।

राजा यह प्रस्ताव मान गया। राजाज्ञा पर पिङ्गल ने दक्षिण का द्वार तुड़वा दिया। उसके स्थान पर नया दरवाजा शीघ्र बनवा भी लिया गया।

पिङ्गल ने राजा के पास जाकर कहा- "महाराज! नया दरवाज़ा बनकर तैयार हो गया है। उसको लगाने के लिए कल अच्छा समय है। बलि देकर द्वार स्थापित करने के लिए कृपया आप अपनी अनुमति दीजिये।"

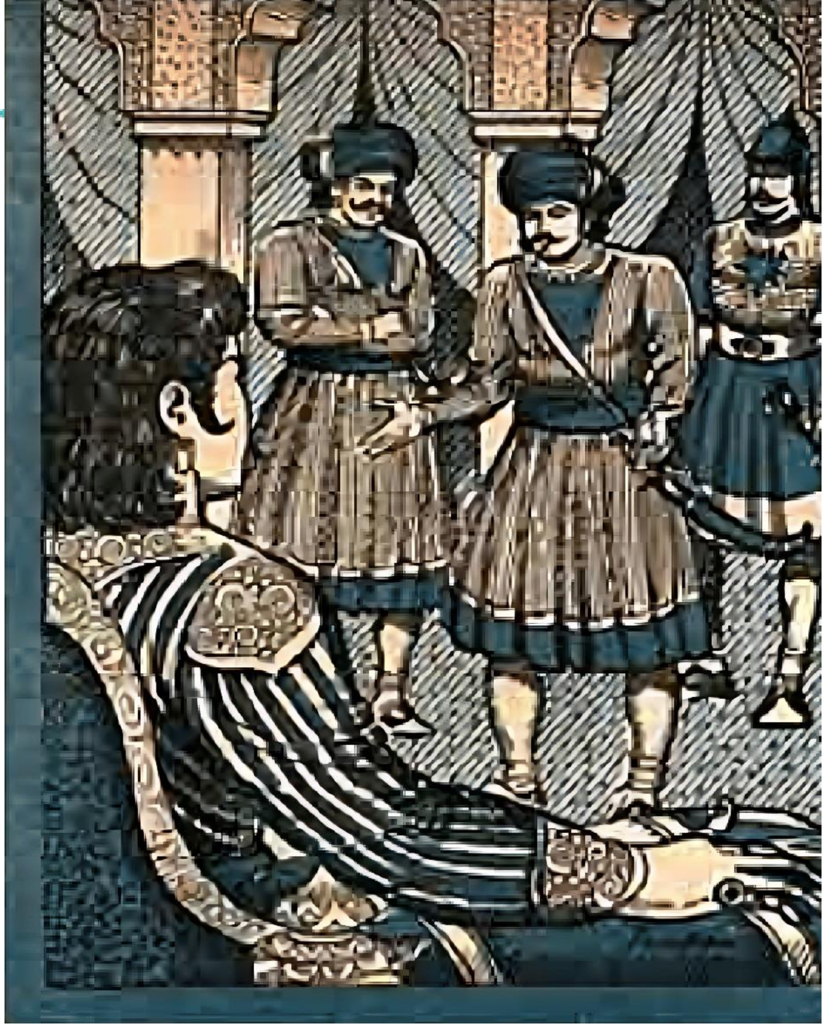
"बलि के लिए क्या प्रबन्ध किया जाना चाहिये?" राजा ने पुरोहित से पूछा।

पिङ्गल को यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि उसकी चाल सफल हो गयी थी और अब अपने साले को मारने का अच्छा मौका मिल गया था।

खुशी खुशी उसने घर आकर अपनी पत्नी से यह कहा-"देख, कल तेरे भाई की उम्र ख़तम हो जायेगी। उसे नये दरवाज़े के लिए बलि दे रहा हूँ।"

"हमारे भाई की ही क्यों बलि दी जा रही है? राजा ने यह क्यों मान लिया है?" पिङ्गल की पत्नी ने पूछा।

"मैंने राजा को यह थोड़े ही बताया था कि फलाने की बलि दी जाय! मैंने



तो सिर्फ इतना ही कहा था कि पीले रङ्ग वाले, गञ्जे सिर और पोपले मुखबाले ब्राह्मण की बलि के लिए जरूरत है। राजा मान गये। कल मैं तुम्हारे भाई को ले जाऊँगा और कहूँगा कि इसकी बलि दी जा सकती है। कौन न कर सकेगा?" पिङ्गल ने कहा।

पिङ्गल की पत्नी ने अपने पति से कुछ न कहा। परन्तु उसने अपने भाई के पास पति की चाल के बारे में खबर भिजवा दी और उसे सलाह दी कि सवेरे होने से पहले वह शहर छोड़कर चला जाये।

जब पिङ्गल की चाल के बारे में, उसके साले को पता लगा तो वह दो-तीन व्यक्तियों को, जिनका रङ्ग पीला था और सिर गञ्जे थे, पोपले मुख थे, अपने साथ लेकर उसी दिन रात को शहर छोड़कर चला गया।

अगले दिन सवेरे पिङ्गल ने राजा से कहा-"महाराजा! बलि के लिए उपयुक्त व्यक्ति फलानी जगह पर रह रहा है। कृपया बुलवाइए।" तुरन्त राजा ने अपने सैनिकों को भेजा। सैनिकों ने उस जगह पर पूछताछ की। उन्हें मालूम हुआ कि वे पिछले दिन ही देश छोड़कर चले गये थे। यह जाकर उन्होंने राजा से कहा।

सैनिकों की बात सुनकर राजा ने कहा-"अब क्या किया जाये? इन चिन्होंवाले ब्राह्मण को कहीं न कहीं से ढूँढ़कर लाना ही होगा।"

तब मन्त्रियों ने कुछ सोचकर कहा-"यह कोई बड़ी समस्या नहीं है महाराज! हमारे पुरोहित ही में सब लक्षण हैं न! उनकी ही बलि देना उचित है।"

"दी तो जा सकती है, पर मैं पुरोहित के बगैर कैसे रहूँ? उनकी जगह हमें कोई योग्य पुरोहित मिलेगा?" राजा ने मन्त्रियों से कहा।

"हमारे पुरोहित के पास तक्कारिया नाम का, उनका शिष्य है। सुना जाता है कि वह गुरु से भी अधिक अक्लमन्द और समझदार है। आप उसे पुरोहित नियुक्त कर सकते हैं।" मन्त्रियों ने राजा से कहा।

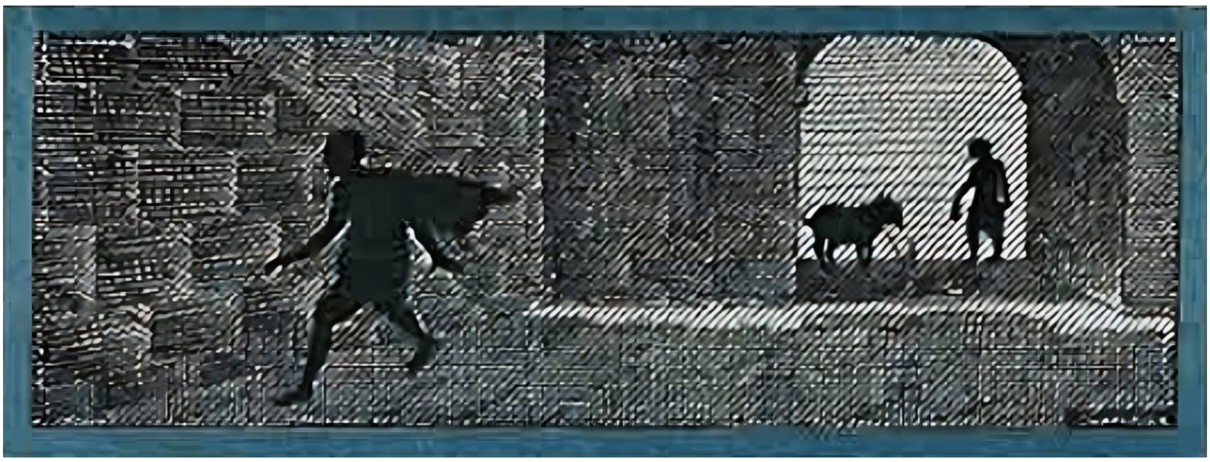
तुरन्त राजा ने तक्कारिया को बुलवाकर कहा-"आज से मैं तुम्हें अपना पुरोहित नियुक्त करता हूँ। तुम शास्त्रोक्त रूप से पिङ्गल की बलि दो और उसको गाड़ दो, और उसके ऊपर द्वार लगवाओ।"

तकारिया दक्षिण द्वार के पास गया। पिङ्गल को बलि देने के लिए, उसके हाथ पैर बाँधकर, यज्ञ पशु की तरह लाया गया। जहाँ बलि दी जानी थी, वहाँ दरवाज़े के पास एक गढ़ा खोदा गया था। उस गढ़े में गुरु और शिष्य, दोनों उतरे।

पिङ्गल ने रोते हुए कहा-"अरे शिष्य! जो गढ़ा मैंने किसी और के लिए खुदवाया था, उसमें मुझे ही घुसना पड़ रहा है।"

"गुरु जी! अनधिकार चेष्टा करनेवाले पर अवश्य आपत्ति आती है। आप फिक्र न कीजिये ! मैं राजा के पास जाकर कहूँगा कि निश्चित मुहूर्त आधी रात तक नहीं है। उसके बाद, इधर उधर का बहाना कर आपके प्राण बचाऊँगा।" तक्कारिया ने कहा।

उसने अपने कथन के अनुसार, बलि का मुहूर्त आधी रात को निश्चय किया। रात को उसने पिङ्गल को भाग जाने के लिए कहा। उसने एक मरी हुई बकरी को लाकर, गढ़े में डाल दिया और सवेरा होते होते वहाँ दरवाज़ा लगवा दिया।





[७]

[पिङ्गल जब पहला द्वार पार कर दूसरे द्वार के पास गया। एक पहाड़ जैसे आदमी को यह बताकर कि वह कौन था, उसे भी वह पार कर गया। परन्तु छठे द्वार पर एक राक्षस के हाथ, जिसने पद्मपाद की शक्ल बना रखी थी, उसकी बुरी हालत हुई। उसे कुछ नहीं सूझा कि क्या किया जाय। तभी वह मन्दिर से, आकश में फेंक दिया गया। उसके बाद...]

पद्मपाद को देखते ही पिङ्गल की जान में जान आई। उसका हौसला बढ़ा। मृत्यु का भय जाता रहा। साहस आ गया। पद्मपाद ने पिङ्गल को नीचे न गिरने दिया। हाथ में उठाकर उसको नीचे जमीन पर धीमे से रख दिया। "पिङ्गल, क्या हुआ तुम्हें? कहीं बुरी तरह चोट तो नहीं लगी है?" पद्मपाद ने व्याकुल होकर पूछा।

"चोट की बात जाने दो, कम से कम जान तो बची। यही काफी है।" पिङ्गल ने पद्मपाद से कहा और मुड़कर उजड़े मन्दिर को देखा। वह देख ही रहा था कि वह नदी जो बिल्कुल सूख गई थी, फिर पानी से भर गई।

पद्मपाद ने पिङ्गल के कन्धे पर हाथ रखकर कहा- "पिङ्गल! हम इस बार हार



वहाँ तुम्हारी शक्ल दिखाई दी। "ठहरो! तुम कौन हो?" उसने ठीक तुम्हारी आवाज़ में पूछा। मुझे सन्देह हुआ, और इस बीच एक गदा चमकी। मैंने आँखें बन्द कर लीं। बस, फिर क्या था, देखते देखते मेरी पीठ पर, सिर पर, धड़ाधड़ मार पड़ने लगी। किसी के ताकतवर हाथों ने मुझे उठाकर आकाश में गेन्द की तरह उछाल दिया। मुझे तुमने नीचे गिरने से बचाया।" पिङ्गल ने कहा।

गये हैं। महामायावी के शिष्य नदी को फिर जल से भर रहे हैं। मन्दिर भी पानी में डूब जायेगा। पर जब हम चाहें तब फिर नदी को सुखा सकते हैं। इसका भेद मैं जानता हूँ। तुम डरो नहीं। पहले अपनी बात तो कहो।"

पिङ्गल ने पद्मपाद को बताया कि वह कैसे पहले द्वार से छठे द्वार तक पहुँचा था और बीच में क्या क्या गुज़रा था। उसने एक बात भी न छोड़ी।

"उस छठे द्वार पर इतना अक्लमन्द भूत पहरा दे रहा होगा, इसकी मैंने कल्पना भी न की थी। मुझे यकायक

"यह बात है!" पद्मपाद ने लाल आँखें करके, पानी में डूबते, उजड़े मन्दिर की ओर देखा। "पिङ्गल! इस बात की कल्पना तक न थी कि महामायावी के शिष्य इस प्रकार का नीच कार्य करेंगे। तुम्हें उन्होंने मेरा रूप धारण कर डराया नहीं तो उससे पहले उनकी सब दुष्ट-शक्तियों को तुमने अच्छी तरह जीत लिया था। यह मेरे लिये अवश्य आनन्द का कारण है।"

पद्मपाद की यह बात सुनकर पिङ्गल का ढाढस बढ़ा। उसने उजड़े मन्दिर को देखकर कहा- "अब हमें क्या करना

होगा? मन्दिर फिर पानी में डूबा जा रहा है।"

"आज हम कुछ नहीं कर सकते। कल से, तीन दिन बाद, फिर एक शुभ दिन आता है। उस दिन तुम फिर महा-मायावी की समाधि में घुस सकते हो। तब तक हमें यहीं रहना होगा और उस दिन की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इस बीच समय काटने के लिए....." कहते कहते पद्मपाद ने गदा को हवा में घुमाकर कोई मन्त्र पढ़ा। तुरत उस निर्जन प्रदेश में एक ऊँचा-सा महल खड़ा हो गया।

पिङ्गल उस जादू के महल को देख रहा था कि उसका हाथ पकड़कर, पद्मपाद उसको महल की ओर ले गया। वे जब महल के प्राङ्गण में पहुँचे तो उनके लिए महल का द्वार खुल गया। दो बड़े हट्टे-कट्टे काले काले विशाल व्यक्तियों ने आकर उन दोनों का नमस्कार करके स्वागत किया। वे दोनों अन्दर चले गये।

"पद्मपाद! ये कौन हैं?" पिङ्गल पूछा।

"ये? हमारे मनोरञ्जन के लिए आये हुए जादू के राक्षस हैं। हम यहाँ



खाली तो बैठ नहीं सकते हैं न? हम इन राक्षसों को आपस में लड़ाकर, तलवार व कुश्ती के जौहर दिखाने के लिए कहेंगे। बड़ा मज़ा आएगा।"

पिङ्गल और पद्मपाद महल के एक बड़े कमरे में प्रवेश कर रहे थे कि उन्हें, कई पहलवान, योद्धा, कसरत करते हुए दिखाई दिये। उसने उनको देखते हुए पूछा-"पद्मपाद! कहीं ये हमारा कुछ बिगाड़गे तो नहीं?"

"हमें इस बारे में डरने की कोई जरूरत नहीं।" पद्मपाद ने आगे बढ़कर



पहले जो व्यक्ति दिखाई दिये थे, उनमें से, एक से कुछ कहा। वे तुरन्त वहाँ से चले गये।

पद्मपाद और पिङ्गल, कमरे में, गद्दों पर, सनदों का सहारा लेकर बैठ गये। कुछ देर में, सोने के पात्रों में तरह तरह के भोजन लेकर कुछ सुन्दर स्त्रियाँ आई। पिङ्गल ने पद्मपाद से पूछा-"पद्मपाद ये गन्धर्व कन्याएँ हैं, या इस सुन्दर रूप में भूत हैं?"

पद्मपाद ने कहा-"भूत"। पिङ्गल को बोलने से रोकते हुए कहा- "भाई, इतने जोर से न बातें करो.... शायद भूत बुरा मानें। हमें हमारी सेवा करने के लिए आये हुए भूतों को, नीची नज़र से नहीं देखना चाहिये। याद रखना भाई! उनको.... इन तीन दिनों के लिए गन्धर्व कन्याएँ ही समझ लो।" फिर पिङ्गल और पद्मपाद ने भोजन किया।

इतने में वे दोनों व्यक्ति वहाँ कुछ भूत पहलवानों, योद्धाओं को लाये। उन्होंने अपने शरीर पर तरह तरह के कपड़े पहन रखे थे। उन्होंने मल्ल-युद्ध, तलवार के पैंतरें दिखाकर पिङ्गल और पद्मपाद का बहुत देर तक मनोरञ्जन किया।

इस तरह तीन दिन बीत गये। चौथे दिन पद्मपाद ने उस जादू के महल को, और उसमें रहनेवाले, जादू के प्राणियों को, अपने जादु के बल से गायब कर दिया। वह उस जगह पर गया, जहाँ उसने पहले मन्त्र-पाठ किया था।

पद्मपाद ने नदी में डूबे हुए मन्दिर की ओर अंगुली दिखाते हुए कहा-"पिङ्गल! अब मैं नदी के जल को सुखा देता हूँ। अब जब तुम फिर महामायावी की समाधि में जाओ तो तुम्हें क्या क्या

करना चाहिये इस बारे में फिर कहने की, ज़रूरत नहीं है। सब बातें तुम्हें याद ही होंगी।"

"पद्मपाद! ऐसी कोई जरूरत नहीं है। पहले खाई हुई मार की सूजन अभी तक नहीं गई है। भले ही मैं कुछ भूल जाऊँ, मैं यह मार, दर्द और तुम्हारे रूप में आये हुए महामायावी के शिष्य को कभी नहीं भूल सकता। उसे ज़रूर याद रखूँगा। इस बार मैं उसकी अच्छी खबर लूँगा।" पिङ्गल ने कहा।

पद्मपाद ने मन्त्र पढ़कर, थोड़ी देर में ही नदी का पानी सुखा दिया। पिङ्गल ने निर्भय हो, मन्दिर के प्रथम द्वार के पास जाकर, फुँफकारते हुए साँप के फन पर हाथ रखा। वह तुरन्त मरकर नीचे गिर गया। फिर द्वार के पीछे से कर्ण कर्कश स्वर में किसी ने कुछ प्रश्न किया।

"मैं पिङ्गल हूँ। मैं अवन्तीपुर का मछियारा हूँ।" कहकर पिङ्गल ने दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खुल गया। पहाड़-सा एक काला आदमी, तलवार घुमाता सामने आया।



उसका पिङ्गल का गरदन झुकाने के लिए कहना। उसका गरदन झुकाना उस आदमी का नीचे गिर जाना सब पहले की तरह गुज़र गया।

पिङ्गल, एक एक द्वार पार कर, जब छठे द्वार पर पहुँचा तो द्वार के समीप, पिङ्गल की माँ ने आँसू बहाते हुए दीन स्वर में कहा "बेटा! क्यों यों कष्ट झेलते हो? ये सब मुझसे देखा नहीं जाता। वापिस चले जाओ। वह पद्मपाद तुम्हें मारने की सोच रहा है।"

पिङ्गल एक क्षण के लिए हैरान हो फिर उसको, पहला अनुभव याद आया। यह जानकर वह हैरान हुआ



कि वह भूत, जिसने पहले पद्मपाद का रूप धारण कर धोखा दिया था, अब माँ का रूप धरकर उसको धोखा देने का प्रयत्न कर रहा था।

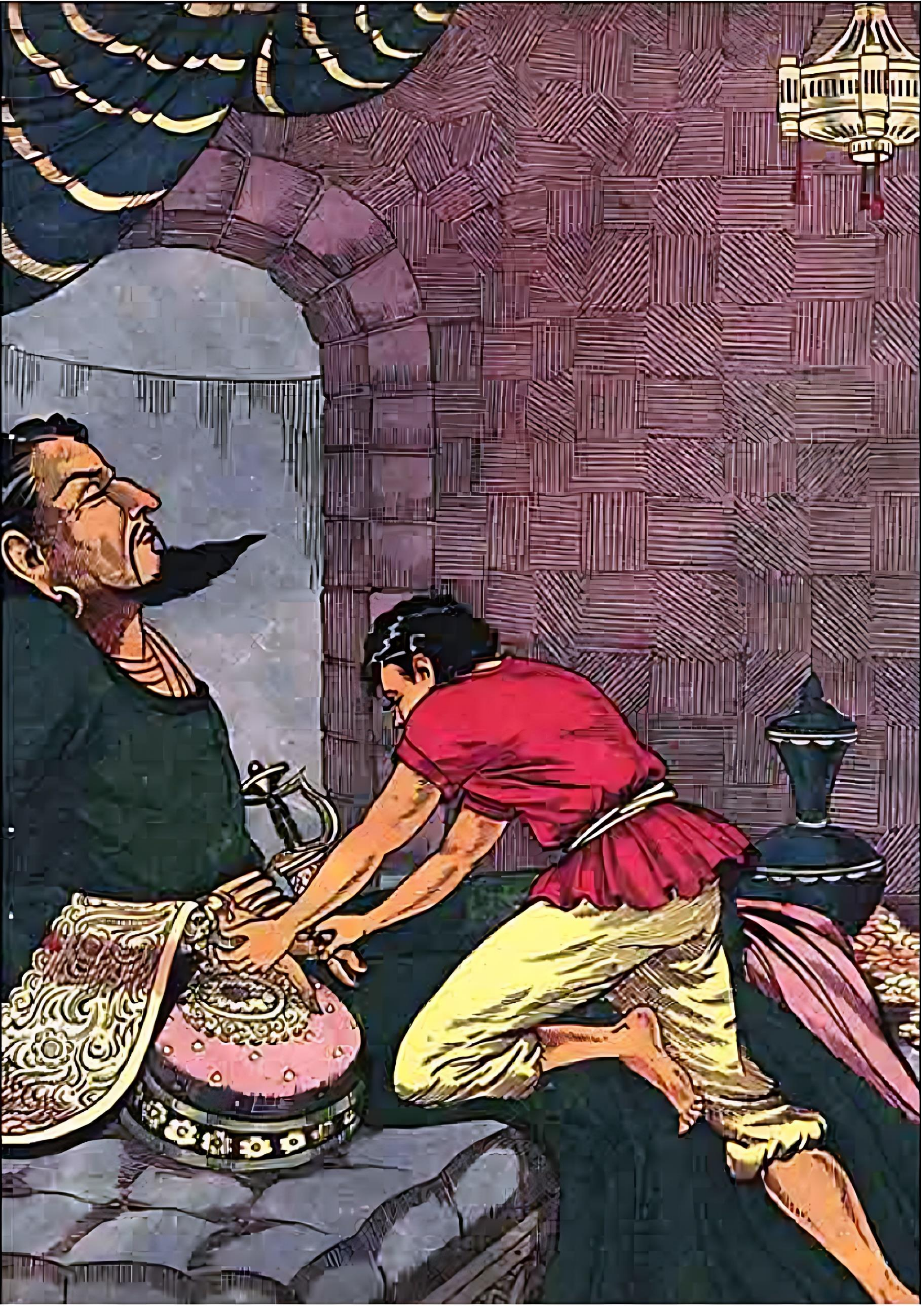
"हटो, रास्ते से! तुम मेरी माँ का रूप धारण कर मुझे धोखा नहीं दे सकते। मैं सब समझता हूँ।" कहते हुए पिङ्गल, पास पड़ी एक तलवार लेकर आगे बढ़ा। रूप बदलकर आया हुआ भूत, चिल्लाकर भाग खड़ा हुआ।

पिङ्गल ने अट्टहास किया। उसके बाद वह तलवार दूर फेंककर बड़ी जल्दी अन्दर घुसा। रेशम के परदे हवा के कारण मानों आवाज कर रहे थे। उन परदों के पीछे से चमकता हुआ एक उज्ज्वल आसन दिखाई दिया।

पिङ्गल, परदों को हटाकर अन्दर गया। रत्न, मणि से जड़े सिंहासन पर महामायावी आँखें मूँदकर बैठा था, मानों योगनिद्रा में हो। पिङ्गल को एक क्षण यह भी सन्देह हुआ कि कहीं वह जीवित न हो। वह धीमे धीमे कदम बढ़ाते महामायावी के पास गया। उसकी नज़र महामायावी के दायें हाथ की अंगुलियों पर गई। उसने चमकती एक अंगूठी को देखा।

पिङ्गल ने, जल्द ही जिस काम के लिए वहाँ गया, वह काम पूरा कर लेना चाहा। उसने निर्भय हो, अंगुली में से अंगूठी उतार ली। अब उसे दो और चीजें लेनी थीं। रत्नों से जड़ी तलवार महामायावी के कमर में बँधी थी। पिङ्गल ने उसे भी लेकर अपने कमर में बाँध ली। अब भूगोल लेना बाकी रह गया था।

पिङ्गल ने चारों तरफ़ देखा। उसे एक तरफ सीढ़ियाँ दिखाई दीं। उन सीढ़ियों के नीचे, एक ऊँची मेज़ पर,



गोल, चान्द-सा चमकता भूगोल दिखाई दिया। पिङ्गल ने उसके पास जाकर उसमें देखा। उसमें विविध विविध देश, उनकी सीमायें, और काम करते उन देशों के निवासी दिखाई दिये। यह देख उसे बड़ा अचम्भा हुआ।

महामायावी की समाधि से जो तीन चीजें पिङ्गल को लेनी थीं, उसने ले लीं। उसने भूगोल को कन्धे पर रख लिया। फिर महामायावी के सिंहासन को देखता, बाहर निकलने लगा।

पिङ्गल ज्योंही महामायावी की समाधि वाले कमरे से निकला, त्योंही उसे सुन्दर, गान सुनाई दिया। "शाबाश, पिङ्गल हम तेरे साहस और समझदारी की प्रशंसा करते हैं।" किसी का मृदु स्वर में कहना, पिङ्गल के कान में पड़ा। कहीं यह आवाज़, महामायावी की ही हो, पिङ्गल ने पीछे मुड़कर देखा, पर महामायावी जैसे बैठा था, वैसे ही था। और वहाँ उसे कोई नहीं दिखाई दिया।

पिङ्गल जब द्वार पारकर बाहर आया तो पद्मपाद ने करतल ध्वनि की- "पिङ्गल, अब हम जीत गये हैं। इस संसार में अब ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जो हमारा मुकाबला कर सके।" वह कहता कहता आगे बढ़ा।

उसी समय नदी में इतनी भयङ्कर ध्वनि हुई, जैसे कोई ज्वालामुखी फूट पड़ा हो। फिर ताड़ के पेड़ के जितनी ऊँची पानी की धारा भूमि में से फूट पड़ी।

पद्मपाद उसको देखकर बहुत डर गया और भय के कारण, यकायक पीछे की ओर कूदा।

(अभी और है)





जानी दुश्मन



विक्रमार्क अपने हठ पर रहा। वह फिर पेड़ के पास गया। शव को उतारकर, कन्धे पर डाल श्मशान की ओर चल पड़ा।

तब शव में स्थित बेताल ने कहा- "राजा! तुम किसी और के लिये इतने कष्ट झेल रहे हो, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। क्योंकि किसी जमाने में, मणिमन्त नाम के एक व्यक्ति ने अपने जानी दुश्मन प्रदीप के लिये, तीन महीने लगातार रात-दिन तकलीफ उठाई थी। उसकी कहानी सुनाता हैं, सुनो।" उसने यह कहानी सुनाई:

बहुत पहले अङ्ग और विदेह देशों में प्रबल विरोध था। उन दोनों में सदा युद्ध होते रहते, और कुछ तय न होता। आखिर एक भयङ्कर युद्ध में

विदेह पूरी तरह हार गया और अङ्ग राजा ने उसको अपने आधीन कर लिया। विदेह राजा का कुटुम्ब दर दर भटकने लगा। अङ्ग राजा के सेनापति मणिमन्त ने अपने को अङ्ग का राजा और विदेह का सामन्त घोषित कर दिया।

युद्ध में विदेह देश का सेनापति मारा गया था। उसका पुत्र प्रदीप पास के पहाड़ों में जा छुपा। उसके साथ और भी कई युवक थे, जिन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि भले ही प्राण चले जायें, वे देश को स्वाधीन करेंगे। उन्होंने प्रदीप को अपना नेता चुना।

वे युद्ध में मणिमन्त को जीत न सकते थे। उनके पास सिवाय तलवारों के और कोई अस्त्र-शस्त्र न था। वे सब मिलकर पन्द्रह से भी अधिक न थे। ऐसी हालत में मणिमन्त को जीतना कोई मामूली बात न थी। मणिमन्त के पास सब प्रकार की सेना थी। अगणित अस्त्र-शस्त्र थे।

"हमारे पास शस्त्र नहीं हैं, सैनिक नहीं हैं, यह सोचकर यदि हम चुप बैठे रहें तो हमारी प्रतिज्ञा पूरी नहीं होगी। अगर हम नियमानुसार युद्ध



नहीं कर सकते हों, तो हमें नियमों का उल्लंघन करके ही, जैसे तैसे शत्रु का नाश करना होगा।" प्रदीप ने अपने मित्रों से कहा।

उसकी देखरेख में, नौजवानों ने लुके-छुपे, अपने ही ढङ्ग से युद्ध शुरू कर दिया। अङ्ग और विदेह के रास्ते में काफिले आते-जाते रहते थे। प्रदीप के आदमी उन्हें लूटा करते थे। जङ्गलों में रहनेवाले उन युवकों के लिए रसद पाने का और कोई रास्ता न था।

वे रात में, विदेह जाते, और यदि वहाँ मणिमन्त के सम्बन्धी मिलते, तो

उनकी हत्या कर देते। एक दिन उन्होंने मणिमन्त के दोनों लड़कों को मार दिया।

प्रदीप के आदमियों के हत्याकाण्ड को देखकर भी मणिमन्त ने कुछ न किया, मानों उसने देखा ही न हो। उसका ख्याल था कि वे शीघ्र जान जायेंगे कि जो काम वे कर रहे थे, वह अति नीच था। पर जब उन्होंने उसके दो लड़कों को लुके-छुपे मार दिया, तो उसे बहुत गुस्सा आया। मणिमन्त ने अपने सरदारों में से एक योग्य सरदार को बुलाकर कहा- "तुम साथ कुछ सैनिकों को ले जाओ और पहाड़ों में रहनेवाले उस दल को मारकर आओ। मगर प्रदीप को किसी भी हालत में न मारना। कुछ भी हो, उसको जीते जी पकड़कर लाना।"

सरदार उसकी आज्ञानुसार सौ सैनिकों को लेकर, उन पहाड़ों में गया, जहाँ प्रदीप का दल रहा करता था। बड़ी मुश्किल से उन्हें प्रदीप के दल का ठिकाना पता लगा। उन्होंने उसे चारों ओर से घेर लिया।

"यह आख़िरी मुठभेड़ है। जी जान से लड़ो। दुश्मन के सामने घुटने न टेकना।" प्रदीप ने अपने दल के लोगों



से कहा। उनमें से एक एक ने मणिमन्त के दस आदमियों से मुकाबला किया। उनमें से आधे सैनिकों को मारकर वे स्वयं मर गये। केवल प्रदीप ही रह गया। परन्तु उसको जीते जी पकड़ने में सरदार को बड़ी दिक्कत हुई। यूँ तो वह बड़ा अच्छा योद्धा था, फिर उसको प्राणों की भी परवाह न थी। आखिर सरदार ने उसके सिर पर पीछे से वार किया। वह बेहोश गिर गया।

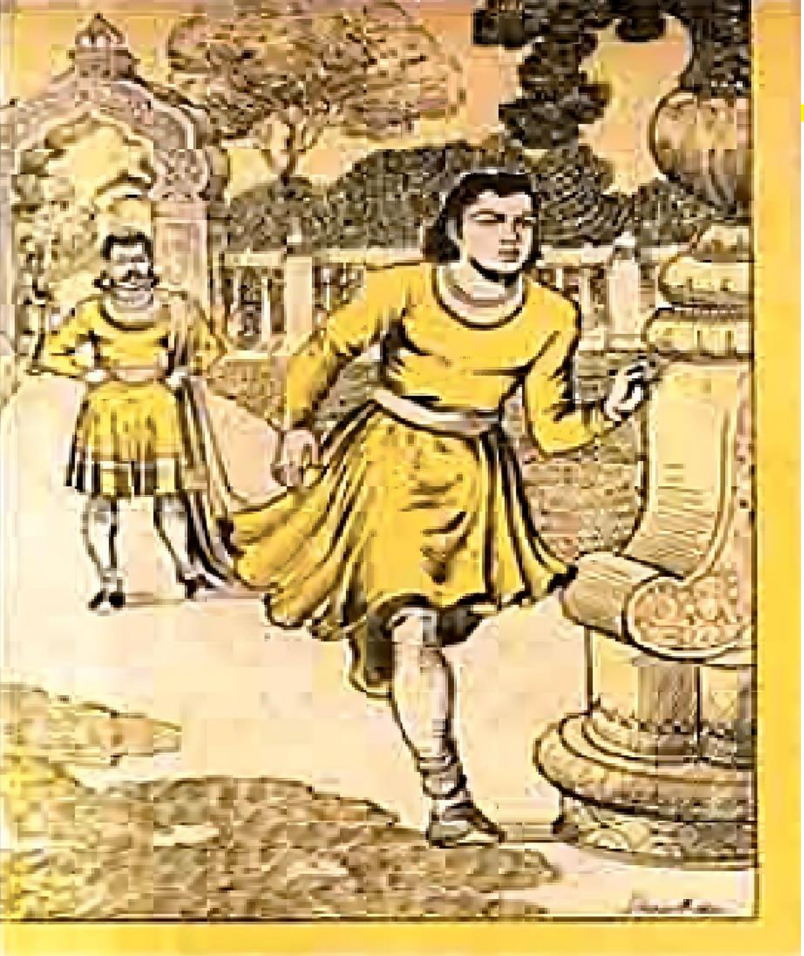
उसी दिन रात प्रदीप को मणिमन्त के पास ले जाया गया। वह मरा तो नहीं था, पर उसकी हालत बड़ी नाजुक थी। राज-वैद्य ने उसकी परीक्षा करके बताया कि उसका जीवित रहना बड़ा कठिन था।

"यह नहीं! इसको जीवित रहना होगा! तुम पूरी कोशिश करके इसको बचाओ।" मणिमन्त ने राज-वैद्य से कहा।

वैद्य ने रात दिन, रोगी की सेवा-शुश्रूषा की। सप्ताह भर प्रदीप को होश न आई। उसके बाद तीन सप्ताह तक, यह कभी होश में रहता, तो कभी बेहोश।

एक महीने बाद राज वैद्य ने मणिमन्त को बताया को बताया-"अब डर नहीं है, यह बालक





फिर जी सकेगा। " महीने भर न राज- वैद्य ने कुछ खाया-पिया, न मणिमन्त ने ही। दोनों सोये भी नहीं।

जब यह मालूम हुआ कि प्रदीप जीवित रह सकेगा तो मणिमन्त की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। जब होश में आकर प्रदीप ने मणिमन्त को पहचाना, तो उसके मुख से निकला "आप?"

".... हाँ.... बेटा, मैं ही हूँ। कोई डरने की बात नहीं। तुम ठीक हो जाओ, यही मैं चाहता हूँ, भले ही इसके लिए मुझे सर्वस्व देना पड़ जाये। तुम घबराना नहीं।"

इसमें कोई अतिशयोक्ति न थी। क्योंकि मणिमन्त हमेशा उसके विस्तरे के पास रहता, उसकी हर तरह से उपचर्या करता आया था। अपने हाथ से उसको भोजन खिलाता। प्रदीप स्वस्थ हुआ तो इसका कारण राज-वैद्य की औषधियों की अपेक्षा मणिमन्त की सेवा-शुश्रूषा अधिक थी।

प्रदीप को चलना तक फिर से सीखना पड़ा। मणिमन्त उसको, रोज़ ले जाकर बाग़ में चलवाता। जब वह चलने लगा तो एक दिन मणिमन्त ने प्रदीप से पूछा-"क्या भाग सकते हो बेटा?" प्रदीप ने भागने की कोशिश की, पर वह भाग न सका।

तीन महीने बीत गये। रोज़ की तरह मणिमन्त ने फिर प्रदीप से पूछा- "क्यों? बेटा, भाग सकते हो?"

"हाँ...." प्रदीप कुछ दूर तक कूदा, फिर भागा।

"अच्छा, तो तुम यहीं ठहरो, मैं अभी आता हूँ।" कहकर मणिमन्त महल में चला गया। प्रदीप न जान पाया कि वह क्यों गया था। वह वहीं स्तब्ध हो उसकी प्रतीक्षा में खड़ा रहा।

थोड़ी देर बाद मणिमन्त वापिस आ गया। उसके हाथ में दो तलवारें थीं।

"ये किस लिए?" प्रदीप ने पूछा।

"हम दोनों के द्वन्द्वयुद्ध के लिए।" मणिमन्त ने कहा। उसकी आँखे अङ्गारे हो रही थीं।

"द्वन्द्व युद्ध किसलिए?" प्रदीप ने पूछा।

"तू मेरा जानी दुश्मन है। मेरे दो लड़कों को तूने लुके-छुपे मारा। मैं तुझे धर्म युद्ध में मार देना चाहता हूँ। इसके लिए ही मैंने मौत के मुँह से तेरी रक्षा की थी। अब मुझे बदला लेने का मौका मिला है।" मणिमन्त ने कहा।

प्रदीप ने उसकी दी हुई तलवार को लेने से इनकार कर दिया। मुँह नीचे किये खड़ा रहा।

"तलवार पकड़ो! अब तक तो तुम कायर की तरह लड़ते रहे। कम से कम वीर की तरह मरो तो। मुझ से बिना युद्ध किये तुम नहीं जा सकते।" कहते हुए मणिमन्त ने उसके हाथ में तलवार रखी।

प्रदीप को मति भ्रम-सा हुआ। पर जब मणिमन्त तलवार लेकर उस



पर लपका, तो उसने आत्म-रक्षा में अनायास तलवार उठाई। वह आत्म-रक्षा के लिए लड़ रहा था, वह मणिमन्त को घायल न करना चाहता था।

तब भी थोड़ी देर बाद, प्रदीप की तलवार मणिमन्त के हृदय में जा लगी। प्रदीप ने तलवार फेंक दी, और वह इस तरह रोया, जैसे उसका अपना पिता मारा गया हो।

मणिमन्त के मरते ही, विदेह में चेतना-सी आ गई। उन्होंने प्रदीप को राजा चुना और अङ्ग देश के सैनिकों को भगा दिया।

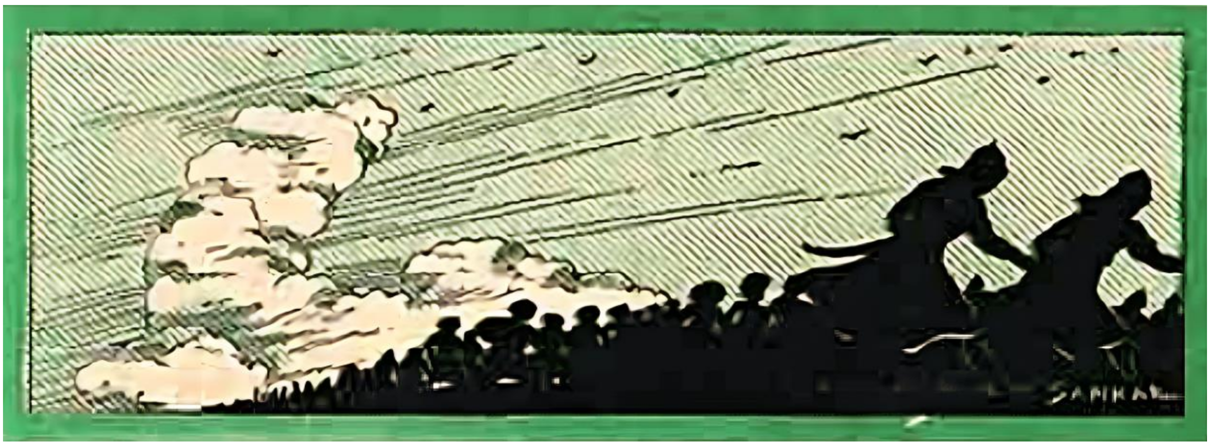
प्रदीप ने मणिमन्त के कुटुम्बवालों को बड़ी बड़ी जागीरें देकर अपना ऋण चुका दिया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर पूछा- "राजा ! मुझे एक सन्देह है। वीरता और उदारता में कौन बड़ा है? क्या यह मणिमन्त है, जिसने अपनी जानी दुश्मन की प्राण रक्षा करके, उसको धर्म-युद्ध में मारना चाहता था या प्रदीप, जिसने चोरी चोरी उसके दो लड़कों को मार दिया था और मणिमन्त से लड़ने के लिए हिचकिचाया था? इस प्रश्न का उत्तर जानकर भी न दिया तो तुम्हारा सिर फूट जायेगा।"

"इसमें सन्देह की कोई बात नहीं है। वीरता और उदारता में, मणिमन्त की अपेक्षा प्रदीप ही बड़ा है। उसने नियमों का उल्लघन कर युद्ध किया था तो देश के लिए ही। क्योंकि तब धर्म युद्ध किया नहीं जा सकता था। मणिमन्त से वह अच्छा योद्धा भी था, यह उनकी आखिरी मुठभेड़ ने सिद्ध भी कर दिया। मणिमन्त की उदारता कपटभरी थी। उसने प्रदीप की सेवा-शुश्रूषा इसलिए की थी, क्योंकि उसका ख्याल था कि आसानी से वह प्रदीप को धर्म-युद्ध में मार सकेगा, और इस तरह विदेहवासियों को प्रभावित कर सकेगा। मणिमन्त को यह न सूझा कि प्रदीप उससे अच्छा योद्धा भी हो सकता था। प्रदीप का भी यही ख्याल था कि उसकी उदारता सच्ची थी। जब उसे मालम हुआ कि वह सच्ची उदारता न थी, तो उसे ऐसा लगा, जैसे उसकी अक्ल मारी गई हो। मणिमन्त की अपेक्षा प्रदीप ही बड़ा है।" विक्रमार्क ने कहा।

राजा का इस प्रकार मौन भंग होते ही, वेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और फिर पेड़ पर जा बैठा।

(कल्पित)





प्रतीकार

कैरो नगर में मंसूर नाम का एक नवयुवक रहा करता था। उसने एक जोड़ी बुलबुल खरीदी। उनको एक पिञ्जरे में रखकर, घर के सामने लटका दिया। बुलबुल आते-जाते लोगों का गा-गाकर मनोरञ्जन करतीं। कई वहाँ थोड़ी देर रुकते और उनका गाना सुनकर जाते।

उस रास्ते एक दिन एक अधिकारी आया। वह खलीफा के अङ्गरक्षकों का मुखिया था। उसका नाम अबूसेफ़ी था। पत्थर का दिल था उसका। इसलिए लोग उसे "शैतान का बच्चा" कहा करते।

अबू ने रुककर बुलबुल का गाना सुना फिर उसने मंसूर के घर में घुसकर पूछा-"दो दिराम दूँगा। क्या बुलबुल बेचोगे?"

"माफ़ कीजिएगा, वे बिकाऊ नहीं हैं।" मंसूर ने साफ़ साफ़ कहा।

अबू पैसे बढ़ाता गया। आखिर उसने कहा-"दो सोने की दीनारें दूँगा।" तब मंसूर उन्हें बेचने के लिए मान गया।

"मैं सीधे घर जा रहा हूँ। पिञ्जरा लेकर मेरे साथ आओ और पैसे लेते जाओ।" अबू ने कहा।

दोनों अबू के घर गये। अबू ने मंसूर से पिञ्जरा लेकर, घर के अन्दर जाते हुए कहा-"यहीं ठहरो! मैं तुम्हें पैसे लाकर दे देता हूँ।"

मंसूर बहुत देर खड़ा रहा। आखिर उसने किवाड़ खटखटाया। एक सिपाही ने आकर किवाड़ खोले। "तुम क्या चाहते हो? कौन हो तुम?" उसने पूछा।

"मैं इस घर के मालिक का नाम नहीं जानता। इतना जानता हूँ कि उन्हें, मुझे दो दीनारें देनी हैं।" मंसूर ने कहा।

उनका नाम अबू है। सब उसे "शैतान का बच्चा" कहकर पुकारते हैं। वे किसी का उधार नहीं रखते। यह कभी नहीं हो सकता।" सिपाही ने कहा।

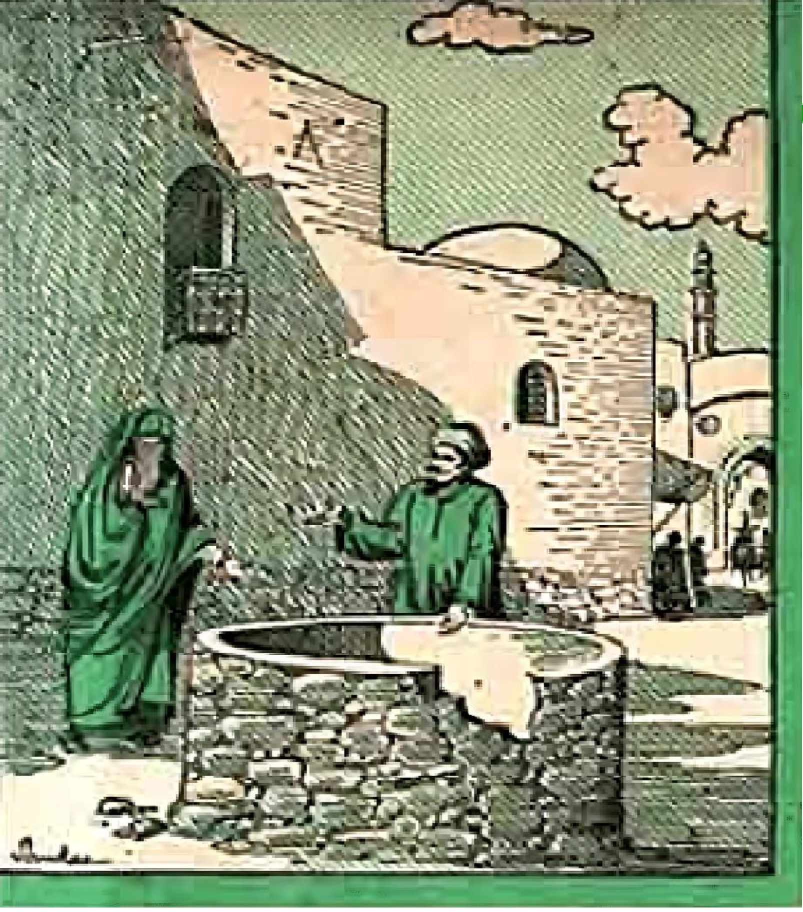
मंसूर तङ्ग आ गया। "शैतान का बच्चा हो, तब क्या, बाप हो तब क्या? मेरी बुलबुल की जोड़ी को उसने खरीदा है। उसे मुझे दो दीनारें देनी हैं। मुझे पैसे दे दे, नहीं तो मेरी बुलबुल मुझे वापिस कर दे।" उसने कहा।.

"अरे भाई! साँप से न खेलो। अगर तुम ने हमारे मालिक को गुस्सा दिलाया तो तुम जिन्दा नहीं रहोगे। इस शहर में कोई ऐसा नहीं है, जो उन्हें देखकर न डरता हो। इसलिए, जो हो गया, सो हो गया। तुम अपने रास्ते चले जाओ। नहीं तो फालतू आफत में फँसोगे।" सिपाही ने कहा।

"जब मैं ही नहीं डर रहा हूँ तो तुम क्यों डर रहे हो? मालिक को जरा एक बार बाहर आने दो, मैं उनसे निपट लूँगा।" मंसूर ने बिना कुछ परवाह किये कहा।

सिपाही को अचरज हुआ। फिर वह मंसूर के बारे में कहने के लिए





"अरे गधे! तुझे पैसे देने हैं? जा बाहर! नहीं तो हड्डी पसली एक कर दूँगा। हट।" अबू गरजा।

मंसूर क्या करता? यह सोचकर कि इस धाँधली के विरुद्ध कुछ न कुछ करना होगा, वह अपने घर चला गया।

अबू के घर के पास एक बड़ा कुँआ था। आसपास की औरतें, उस कुँए से पानी ले जाती थीं। मंसूर ने स्त्री का वेष धरा। महीन कपड़े का बुरका पहन, हाथ में काठ की बाल्टी लेकर, वह कुएँ के पास गया। जब तक अबू उस तरफ से न गुज़रा, वह वहीं अपना वक्त काटता रहा। जब उसका शत्रु उस तरफ से गुज़रा तो मंसूर ने काठ की बाल्टी धड़ाम से कुएँ में फेंक दी। "अरे, नयी बाल्टी है। कुएँ में गिर गई। मुझे मार देंगे। क्या किया जाय?" वह औरत की आवाज़ में रोने-धोने लगा।

अकेले किसी औरत को रोता देखकर अबू ने पास आकर पूछा- "क्यों? क्या बात है? क्या हुआ? बताओ!"

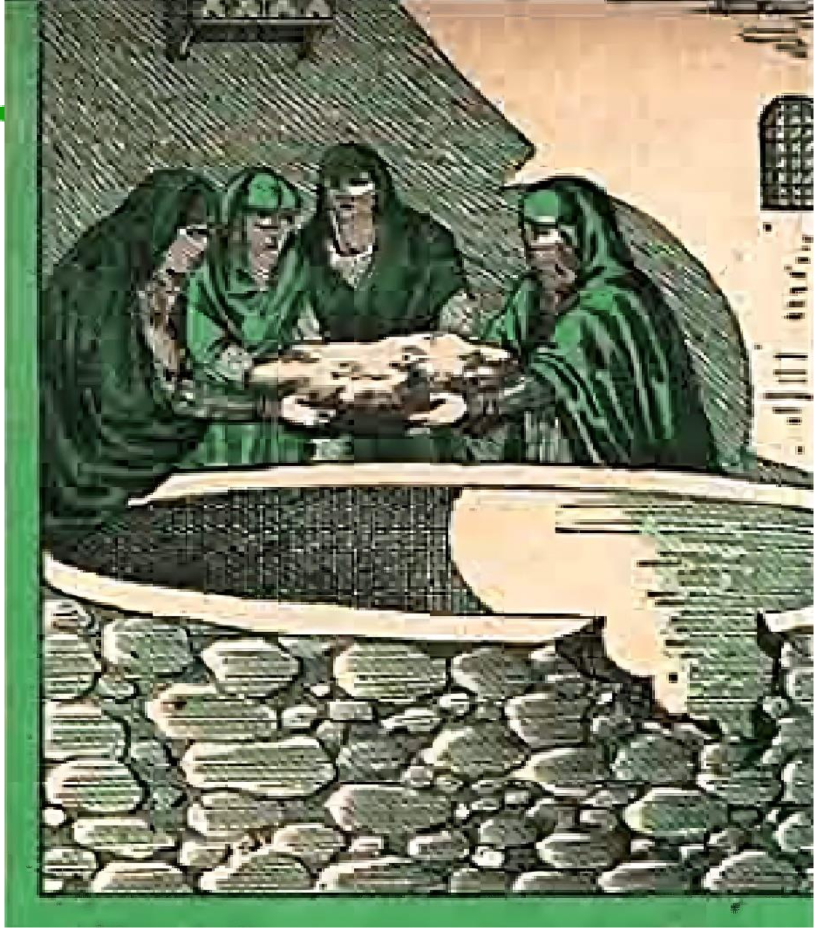
मालिक के पास अन्दर गया। मंसूर भी उसके पीछे चला।

सिपाही की बात सुनकर अबू ने गुस्से में कहा-"अरे, इसकी इतनी हिम्मत! अन्दर भेजो, में उसकी खबर लूँगा।"

"मैं यहाँ हूँ, हुजूर!" कहता हुआ मंसूर सामने आ खड़ा हुआ।

"तुम्हें यहाँ क्या काम है?" अबू ने डाँट बताई।

"हुजूर, आपने एक घण्टे पहले मेरे पास से दो बुलबुलें खरीदी थीं। मुझे मेरी दो दीनारें दिलवाइये। नहीं तो मेरी बुलबुले वापिस कर दीजिये। मैं चला जाऊँगा।" मंसूर ने कहा।



मसूर ने कुएँ में झुककर देखते हुए कहा-"यह देखो मेरी बाल्टी।"

अबू भी कुएँ में झुककर देखने लगा। तुरत मंसूर ने उसके पैर उठाकर, उसे कुएँ में धकेल दिया। उस दुष्ट को कुएँ में धकेलकर मंसूर सीधे अपने घर गया। और तुरन्त उसने अपना घर एक और मोहल्ले में बदल लिया।

अबू कुएँ में गिरकर मरा नहीं, क्योंकि कुआँ उतना गहरा न था। जब वह कुएँ में गिरा तो उसको कई जगह चोट भी लगी। वह कुएँ से बाहर न निकल सका।

जोर जोर से चिल्लाने लगा-"मुझे ऊपर खींचो।"

पानी के लिए आई हुई औरतों ने जब यह सुना तो वे घबराई। उन्होंने कुएँ में देखा, पर वे अबू को न पहचान सके।

उन्होंने कुएँ में झुककर पूछा-"तुम कौन हो? शैतान हो, या उसके बच्चे?"

यह जानकर कि उन स्त्रियों ने उसे पहचान लिया है, उसने कहा-"हाँ, हाँ, मैं शैतान का बच्चा हूँ।"

औरतों की घबराहट और भी बढ़ गई। उन्होंने एक बड़े पत्थर को उठाकर कुँए में फेंकते हुए कहा-"तो तू यहीं मर"। वे बिना पानी लिये, चिल्लाती चिल्लाती अपने घर वापिस चली गयीं।

सौभाग्य से, वह पत्थर अबू के सिर पर न पड़ा।

यह अफवाह फैल गई कि उस कुएँ में शैतान आ पड़ा है। इसलिए उसमें से किसी को पानी नहीं लेना चाहिए। यह औरतों की अफवाह मर्दों के पास भी गई। आखिर बात क्या थी, यह देखने वे कुएँ के पास गये। उनकी सहायता से अबू बाहर निकला। पर उसकी आँख

फूट चुकी थी। लोगों ने उसे उसके घर पहुँचा दिया।

अबू को बहुत जगह चोट लगी थी। उसे बड़ा दर्द होता, रात भर नींद न आती। हकीमों ने आकर दवा दी, पर कोई फायदा नहीं हुआ।

मंसूर का प्रयत्न सफल नहीं हुआ। अबू जीवित बाहर निकल झाया था। वह जानता था कि बदला लेने में अबू साँप की तरह था। अगर उसको न मारा गया तो वह ही उसे मार देगा। इसलिए जरूर कुछ न कुछ करना है।

मंसूर ने एक बूढ़े हकीम का वेष धरा। सफेद दाढ़ी लगाई। पीठ भी कुबड़ी कर ली। कुछ दवाइयाँ लेकर, वह उस गली में गया, जहाँ अबू रहा करता था।

अबू के नौकरों ने उसे रोक कर पूछा-"हकीम जी! हमारे मालिक चोटों के कारण परेशान हैं। क्या आप उनका इलाज कर सकेंगे?"

"कोई भी बीमारी हो, में इलाज़ कर सकता हूँ।" मंसूर ने कहा।

नौकरों ने अबू के पास जाकर हकीम के बारे में बताया। जब उसको पता लगा



कि वह हकीम कुबड़ा था, तो उसका इरादा बन गया। उसका ख़याल था जो ऐसे होते थे, साधारणतया वे अधिक अक्लमन्द होते हैं।

मंसूर ने अन्दर आकर रोगी को परीक्षा करने का अभिनय किया। और कहा कि वह कपाय बनाकर पिये। कपाय पीते ही अबू कै करने लगा।

"यह क्या हकीम जी?" अबू ने पूछा।

"मैंने बहुत बढ़िया दवा दी है। तुम्हारे मन में कोई मलाल है। नहीं तो दवा का यह असर न होता। कहो, क्या तुमने किसी से बदला लेने की सोची है?" मंसूर ने पूछा।

तुरन्त अबू को मंसूर की याद आई। "बदले की क्या बात है। जब तक में उसकी बोटी बोटी नहीं कटवा दूँगा, तब तक चैन नहीं लूँगा।" तिलमिलाते हुए अबू ने कहा।

"जब तक तुम ऐसे बुरे ख्याल नहीं छोड़ दोगे, तब तक तुम्हारी बीमारी ठीक नहीं होगी।" मंसूर ने कहा।

"जब ठीक होनी होगी, तब होगी। पर मैं उस मंसूर को नहीं छोड़ूंगा। उसने



मेरी कितनी फजीहत की है। उसकी इतनी हिम्मत कि मेरी पगड़ी उछाले।" अबू ने कहा।

"यह बात है, तो पहले तुम्हारे मन को शान्त करने के लिए दवा तैयार करनी होगी।" कहते हुए, मंसूर ने सब नौकरों को एक एक चीज के लिए बाहर भेज दिया।

फिर उसने अपनी दाढ़ी निकाल दी। पीठ भी सीधी करके कहा-"मैं मंसूर हूँ। इधर उधर की झूठमूठ बातें न बनाओ। मुझे मेरे पैसे वापिस कर दो। मेरी बात में दखल न देना। मैं तुम से डरनेवाला नहीं हूँ।"

अबू की हालत खराब थी। वह कमजोर था। पर तब भी वह मंसूर से भिड़ पड़ा।

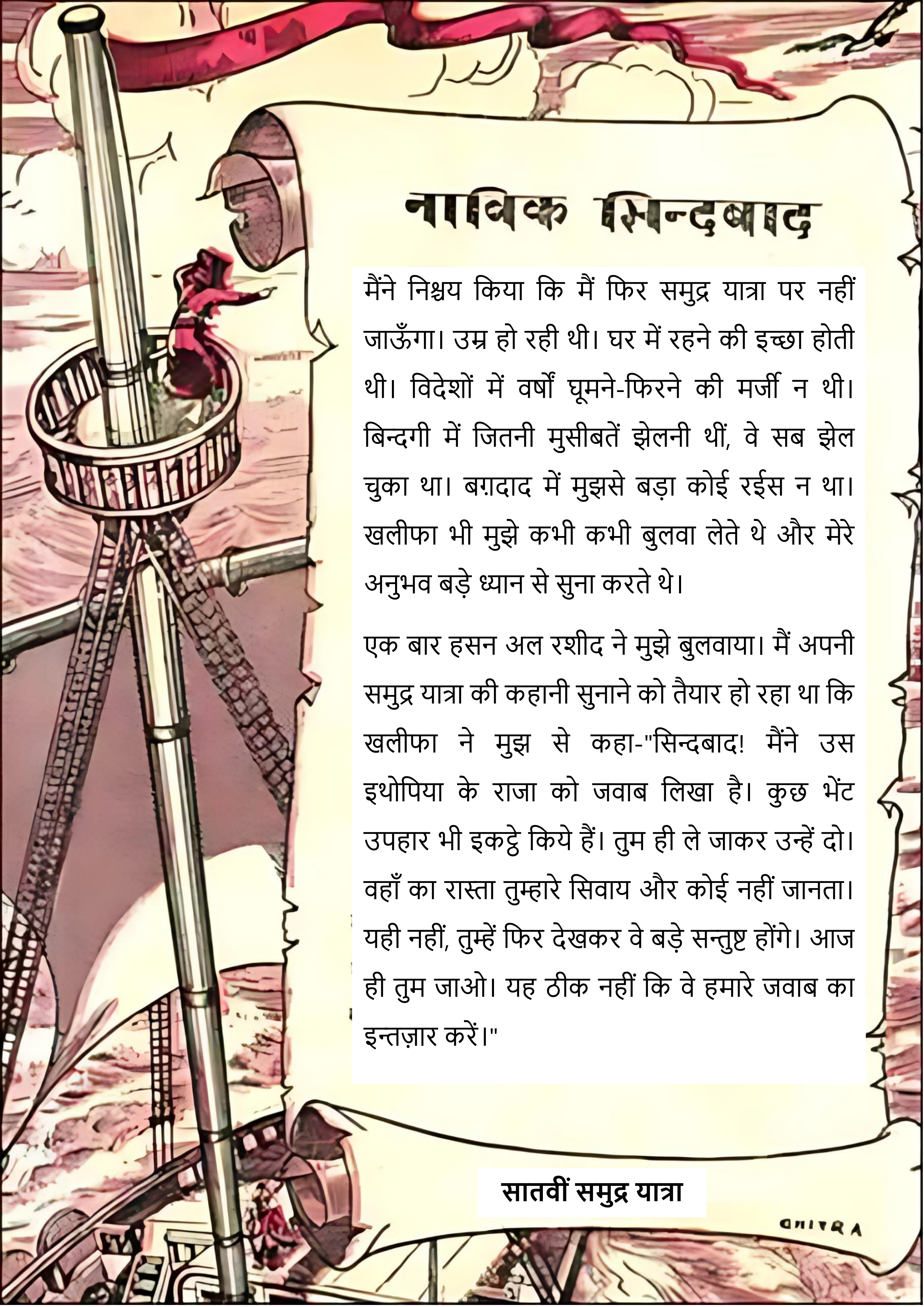
मंसूर ने हँसते हुए कहा- "तू मुझे क्या मारेगा? मैंने तुझे पहले ही विष दे दिया है। यह लो मेरे पास वह दवा भी है, जो इस विष का असर हटा देगी। दो सौ दीनारें दोगे, तो मैं वह दवा दूँगा। नहीं तो तेरा वक्त आ गया है। एक घण्टे से अधिक न जिओगे।"

अबू डर गया। उसने कराहते कराहते दो सौ दीनारें मंसूर के हाथ में रखते हुए कहा-"विष को हटाने के लिए जल्दी दवा दो। नहीं तो मर जाऊँगा।"

अबू का डर और मौत का भय देखकर मंसूर मन ही मन हँसा। उसने अपने जेब में से एक शीशी निकाली, और उसमें से एक दवा निकालकर अबू के गले में डाली। वह मीठी थी। अबू को जीने की उम्मीद बँधी।

"अब मौत का भय नहीं है।" कहते हुए मंसूर दो सौ दीनारें लेकर, अपने घर चला गया।





नाविक सिन्दबाद

मैंने निश्चय किया कि मैं फिर समुद्र यात्रा पर नहीं जाऊँगा। उम्र हो रही थी। घर में रहने की इच्छा होती थी। विदेशों में वर्षों घूमने-फिरने की मर्जी न थी। बिन्दगी में जितनी मुसीबतें झेलनी थीं, वे सब झेल चुका था। बग़दाद में मुझसे बड़ा कोई रईस न था। खलीफा भी मुझे कभी कभी बुलवा लेते थे और मेरे अनुभव बड़े ध्यान से सुना करते थे।

एक बार हसन अल रशीद ने मुझे बुलवाया। मैं अपनी समुद्र यात्रा की कहानी सुनाने को तैयार हो रहा था कि खलीफा ने मुझ से कहा-"सिन्दबाद! मैंने उस इथोपिया के राजा को जवाब लिखा है। कुछ भेंट उपहार भी इकट्ठे किये हैं। तुम ही ले जाकर उन्हें दो। वहाँ का रास्ता तुम्हारे सिवाय और कोई नहीं जानता। यही नहीं, तुम्हें फिर देखकर वे बड़े सन्तुष्ट होंगे। आज ही तुम जाओ। यह ठीक नहीं कि वे हमारे जवाब का इन्तज़ार करें।"

सातवीं समुद्र यात्रा



मुझे ऐसा लगा जैसे आँखो के सामने कोहरा छा गया हो। मैं बहुत घबरा गया। यह सोचकर कि कहीं खलीफा नाराज़ न हो, मैंने कहा कि मैं यात्रा के लिए तैयार हूँ। उन्होंने मार्ग-व्यय के लिए दस हज़ार दीनारें दीं। उन्होंने अपने हाथ से लिखा जवाब, और इथोपिया के राजा को देने के लिए उपहार मुझे दिये। उनमें एक लाल मखमल का गद्दा, दो और रङ्ग के गद्दे, सौ रेशम के थान, रत्नों से जड़ी सुराई, दो अच्छी नस्ल के अरबी घोड़े, कितनी ही चीजें थीं।

जाने की मेरी कतई इच्छा न थी। फिर भी मैं बग़दाद से बसरा गया। वहाँ जाकर एक जहाज़ पर सवार हुआ। दो महीने की यात्रा के बाद, में उस द्वीप में पहुँचा, जहाँ इथोपिया का राजा रहता था। खलीफा के दिये हुए जवाब और उपहार उसको दे दिये। उसने खलीफा की उदारता की खूब प्रशंसा की। उसने मुझे वहीं काफी दिन रहने के लिए कहा। परन्तु में कुछ दिन ही रह सका। उससे विदा लेकर, उसके दिये हुए पत्र और भेंट को लेकर में जहाज़ में फिर बसरा के लिए रवाना हुआ।

क्योंकि हवा अनुकूल थी, इसलिए वापिसी यात्रा मज़े में शुरू हुई। कोई रुकावट नहीं आयी। रास्ते में सीन द्वीपों में, यात्रियों ने खरीद-फरोख्त की। उस द्वीप को छोड़ने के सात दिन बाद, एक दिन खूब जोर से बारिश शुरू हुई। कहीं हमारा माल न भीग जाये, इसलिए हमने उनको कपड़ों से ढँक दिया और अल्लाह को याद किया। इस बीच कप्तान ने मस्तूल पर चढ़कर इधर उधर देखा। जब वह नीचे उतरा तो उसके चेहरे पर हवाइयाँ

उड़ रही थीं। वह हमारी तरफ इस तरह देखने लगा, जैसे कोई मुर्दा हो। फिर अपनी दाढ़ी नोंचने लगा। हम सब भाग कर उसके पास गये और घबराते हुए हमने पूछा "क्या बात है?"

"अब हमें मौत निगलने जा रही है। अल्लाह को याद करो। अगर हमारी कोई मदद कर सकता है तो वह ही कर सकता है, और कोई नहीं। जो कुछ लेना-देना है, सो कर लीजिए। रास्ते से भटक आये हैं। अब हमारी ख़ैरियत नहीं।"

फिर उसने अपने थैले में से एक डिब्बी निकाली। सुँघनी ली। एक किताब देखकर कहा "जिसका मुझे डर था, वह ही हुआ। वह जो किनारा दिखाई दे रहा है, वह बड़ा खतरनाक है। यहाँ भयङ्कर सर्प और जन्तु हैं। समुद्र में इतने बड़े बड़े मच्छ हैं कि वे जहाज़ को भी निगल सकते हैं। जो बात है, सो मैंने कह दी है। आगे अल्लाह की मर्जी।"

उसने कहा ही था.... कि हमारा जहाज़ ऊपर उठा.... और फिर पानी में जा गिरा। हमारा कलेजा थम सा गया। सारा समुद्र उफनाता सा लगा। इस उपद्रव का कारण

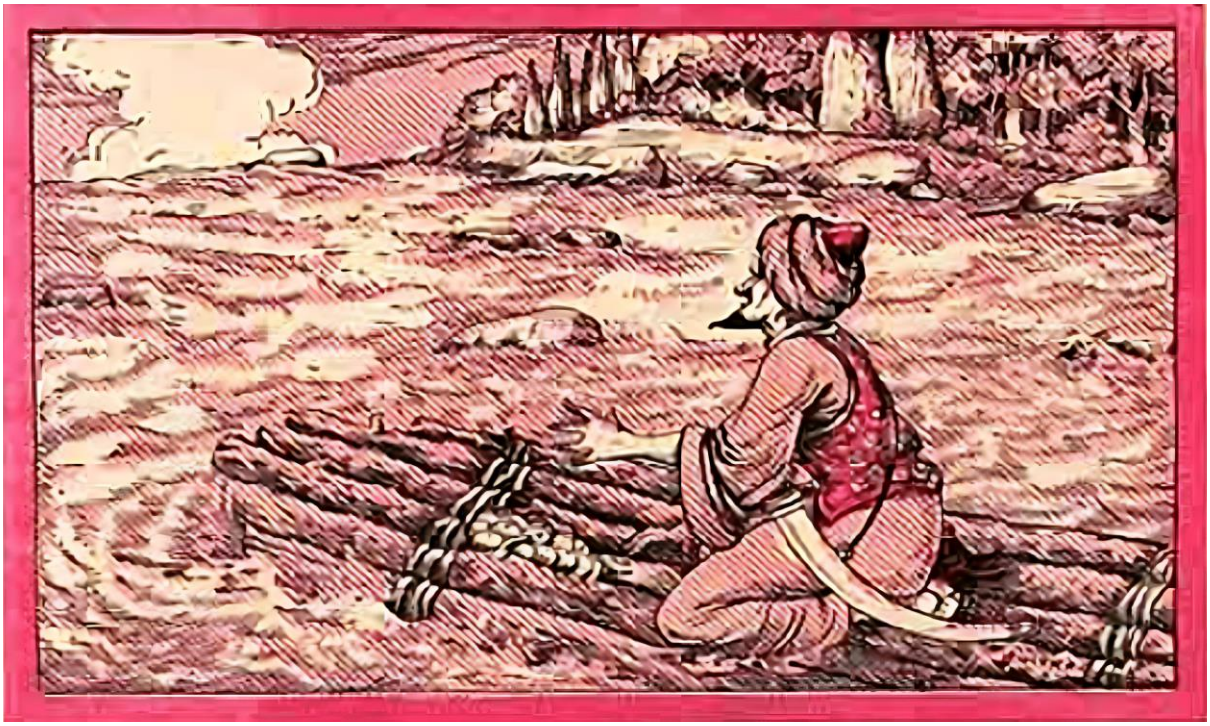


तीन बड़े बड़े मच्छ थे। वे पहाड़ जैसे थे। हमारे जहाज़ का पीछा करते आ रहे थे। उनमें से एक बड़ा मच्छ जिसका मुख इतना बड़ा था, मानों कोई पहाड़ की घाटी हो, फैलाए हमारे जहाज़ के पास आया। ज्योंही जहाज़ उसके मुख में गया, त्योंही में समुद्र में कूद पड़ा। में पानी में गिरा ही था कि उस मच्छ ने जहाज़ को निगल लिया। फिर वे मच्छ समुद्र में डूबकर कहीं चले गये।

जब वे मच्छ जहाज को चबा रहे थे, तो एक शहतीर बाहर आ गिरा। मैं उस

पर चढ़कर बहुत समय तक थपेड़े खाता, इधर उधर बढ़ता रहा। आखिर में एक द्वीप में पहुँचा। उस द्वीप में फलों के वृक्ष थे। तेज़ बहने वाली एक नदी भी थी। मैंने उस नदी में यात्रा करनी चाही; क्योंकि मणियों के द्वीप में नदी ने ही मेरी रक्षा की थी। "वह नदी बचायेगी तो बचायेगी, नहीं तो मेरी मुसीबतें ख़तम हो जायेंगी। यही मेरी आखिरी यात्रा है।" यह सोच मैंने कुछ फल खाये। पेड़ की टहनियों को इकट्ठा करके एक तमेड़ बनाई। मैं तब न जानता था कि वे टहनियाँ शुद्ध चन्दन की थीं। टहनियों को मिलाकर बाँधने के लिए कहीं रस्सी भी न थी। मज़बूत बेलों को लेकर, मैंने तमेड़ तैयार की। उस पर मैंने फल जमा कर लिए। मैंने किनारे से तमेड़ धकेली ही थी कि वह बाण की तरह बहाव में चलने लगी। उस तेज़ी के कारण मेरा सिर चकरा गया और में फलों के ढेर पर गिर गया।

कुछ दूर जाने के बाद, मुझे शोर सुनाई दिया। नदी झाग हो रही थी। वह इतनी तेज बह रही थी कि कुछ नहीं कहा जा सकता। आगे देखने पर

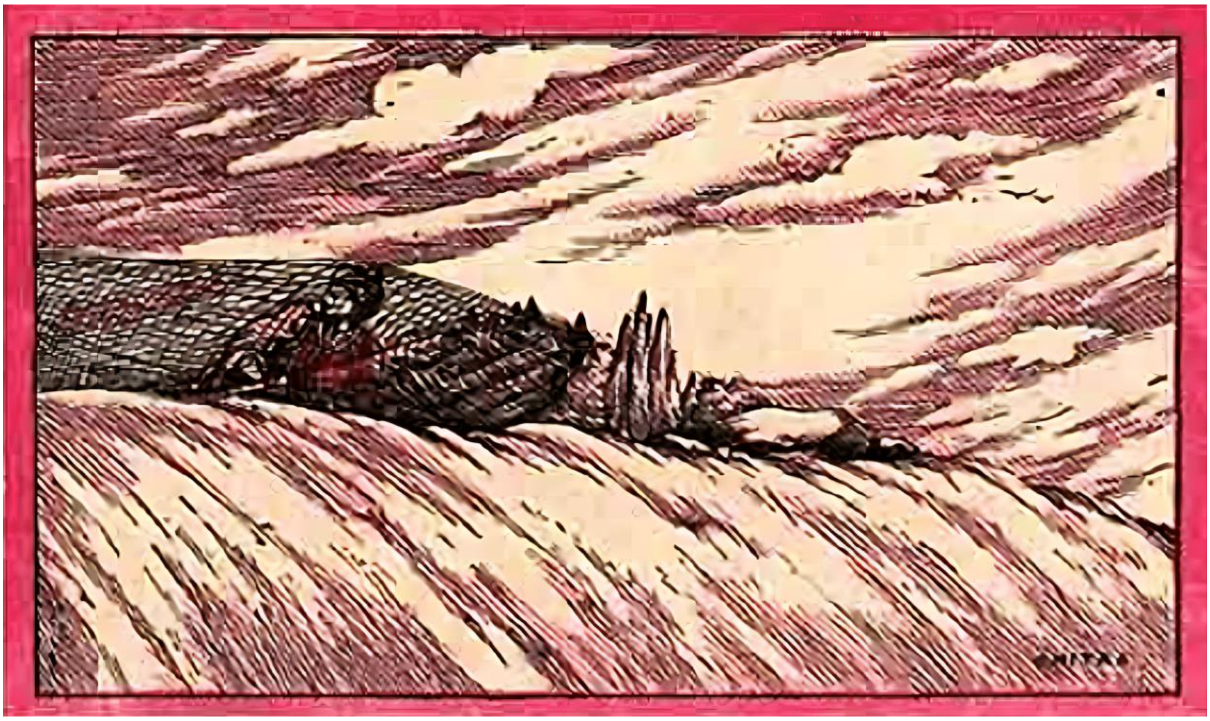


लगता था, जैसे यकायक नदी कहीं लुप्त हो गई हो। शोर से अनुमान किया जा सकता था कि वहाँ एक प्रपात था। और मेरी तमेड़ बाण की गति से उस तरफ जा रही थी।

बस, मैंने सोचा कि मेरी ज़िन्दगी ख़तम हो गई है। मैं नहीं चाहता था कि प्रपात में गिर कर जब मेरा शरीर टुकड़ा टुकड़ा हो रहा हो, तो मैं अपनी आँखों अपनी मुसीबत देखूँ। इसलिए आँखें मूँदकर, तमेड़ ज़ोर से पकड़कर में लेट गया। मैं अल्लाह की याद करने लगा।

वह तमेड़ प्रपात के किनारे तक गई और यकायक रुक गई। मैंने आँखें खोलीं। क्या देखता हूँ कि मैं और मेरी नाव बड़े जाल में फँसी हुई थी। जाल फेंकनेवाले किनारे पर खड़े थे। उन्होंने मुझे और मेरी तमेड़ को किनारे पर खींच लिया।

में रहे सहे प्राण लेकर, सरदी के कारण काँपता काँपता पड़ा हुआ था। सफेद दाढ़ीवाले एक बूढ़े ने तरस खाकर, मुझ पर गरम कपड़े ओढ़े। मेरे सारे शरीर की मालिश की । उसकी उपचर्या





के कारण मेरी जान में जान आई। मैं उठकर बैठ गया। पर मेरे मुख से बात न निकल रही थी। बूढ़ा मुझे पकड़कर स्नानागार ले गया। उसने वहाँ मुझे स्नान कराया। सुगन्धित तेल लगाये। फिर वह मुझे अपने घर ले गया। घरवालों ने मुझे बड़े स्नेह से देखा-भाला। बैठने के लिए उन्होंने आसन दिया और खाने के लिए उत्तम भोजन। फिर उसने मुझे एक कमरा दिया और मेरी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए कई गुलामों को छोड़कर, वह अपने काम पर चला गया। इस तरह तीन दिन बीत गये। न बूढ़े ने मुझसे कुछ पूछा, न किसी और ने ही। इन तीन दिनों में मैं जैसा था, वैसा फिर हो गया।

चौथे दिन बूढ़े ने आकर पूछा- "आपको किसी चीज़ की कमी तो नहीं? अल्लाह की मेहरावानी से मैं उस समय वहाँ था। इसलिए आपकी रक्षा कर सका। मगर आप कौन हैं? कहाँ से आ रहे हैं?"

मैंने कृतज्ञता प्रकट कर अपनी सारी कहानी सुनाई। मैंने कहा कि मैं व्यापारी हूँ। मैंने बहुत बार समुद्र यात्रा की है। ये एक घण्टा, जो कुछ



मैंने कहा, सुनते रहे। फिर उन्होंने कहा-"यह बात है तो आप अपना माल तुरन्त बेच दीजिये। क्योंकि यह बहुत बढ़िया है। यहाँ उसके अच्छे दाम हैं।"

यह सुन मुझे आश्चर्य हुआ। वे क्या कह रहे थे, मुझे कुछ समझ में न आया। क्योंकि मेरे पास कुछ न था। सिवाय पहने हुए कपड़ों के, कोई माल न था। मगर मैंने यह उसे बताया नहीं। सिर्फ यह कहा- "अच्छा, ऐसा ही करेंगे।"

"तब देरी किस बात की? आइये बाजार चलें। अच्छा भाव मिले तो

बेच देंगे, नहीं तो आप उसे मेरे गोदाम से न निकलवाइये।" बूढ़े ने कहा।

"आपकी जैसी इच्छा। मैं आपके हाथों में हूँ। आप जैसा मुनासिब समझें वैसा कीजिये। मुझसे कुछ कहने की जरूरत भी नहीं है।" मैंने ही मन ही मन अचरज करते हुए कहा।

उसके बाद हम सब मिलकर बाज़ार गये। मेरे आश्चर्य की कोई हद न थी। मेरी तमेड़ वहाँ थी। व्यापारी और दलाल, उसको गौर से देख रहे थे। "या खुदा! यह बहुत बढ़िया चन्दन है। मैंने कहीं भी इतना अच्छा चन्दन नहीं देखा है।" आदि बातें मुझे सुनाई दे रही थीं। मेरा माल क्या था, तब मुझे मालूम हुआ। परन्तु मैं कुछ न बोला। मैंने अपनी गम्भीरता बनाये रखी। वृद्ध की अनुमति पर नीलामी शुरु हुई। किसी ने कहा-"एक हज़ार दीनार। बूढ़े ने कहा-"दो हज़ार"। किसी और ने कहा-"तीन"। दस हज़ार तक दाम गया। तब नीलाम करनेवाले ने मेरी तरफ देखकर पूछा-"क्या दस हज़ार पर छोड़ दूँ?" मैंने कहा-"नहीं।"

तब वृद्ध ने मेरी ओर देखकर-"इससे अधिक दाम देना मुश्किल है। व्यापार में मन्दी है। चाहें तो आप दो तीन सौ और ले लीजिये और मुझे यह माल लेने दीजिये।"

"बाबू! अगर आप लेना चाहें तो ज़रूर ले लीजिये। मैं नहीं रोकूँगा।" वह वृद्ध उस तमेड़ को गुलामों से उठवाकर अपने गोदाम में ले गया। हम दोनों घर पहुँचे। उसने दस हज़ार, एक सौ दीनारें, एक लोहे की पेटी में रखकर मुझे दीं।

(अभी और है)





आदर्श दाम्पत्य

किसी जमाने में प्रयाग में एक व्यापारी रहा करता था। वह सम्पन्न तो था ही, सज्जन भी था। उसकी पत्नी हर तरह से उसके समान ही थी। उनका दाम्पत्य आदर्श दाम्पत्य था। उनके जीवन में एक ही कलङ्क था, और वह था उनका लड़का शशिकेतु। शशिकेतु बड़ा दुष्ट था। वह बचपन से ऐसी बुरी सोहबत में पड़ा कि बिल्कुल बिगड़ गया। पिता ने बहुत समझाया, माता ने बहुत मनाया पर वह न माना, न सुधरा। उसके कारण, उसके माता-पिता के लिए सिर उठाकर चलना मुश्किल हो गया।

व्यापारी का, नगर का पुजारी अच्छा मित्र था। इसलिए व्यापारी उससे अपने लड़के के बारे में कहता- "शशि की दुष्टता दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। कतई घट नहीं रही है। मैं इस आशा में था कि जैसे जैसे वह बड़ा होता जायेगा, वैसे वैसे सुधरता जायेगा, पर मुझे निराश होना पड़ा। उसके सुधार के लिए क्या किया जाय, आप ही बताइये। मेरी पत्नी उसके कारण सूखती जा रही है। अगर वह ठीक न हुआ, तो वह भी जिन्दा न रह सकेगी।" व्यापारी ने व्याकुल होकर कहा।

"सच पूछा जाये, तो तुम दोनों की अच्छाई के कारण ही वह इतना बिगड़ा है। तुम्हारे बल पर ही वह खुले साँड की तरह घूमता फिरता है। मेरी बात मान जाओ और उसे कहीं दूर देश भेज दो। वहाँ उसकी कोई सुनेगा नहीं। फ्रिजूल खर्ची के लिए पास पैसा न होगा। उसे

श्री रामचन्द्र शर्मा

ज़रूर अपने आप रोज़ी का कोई रास्ता ढूँढ़ना होगा। उसके सिर पर जिम्मेवारी आ पड़ेगी और फिर वह स्वयं ही बदल जायेगा। कामकाजी बन जायेगा और अच्छी राह पर आ जाएगा।" पुजारी ने व्यापारी से कहा।

व्यापारी को यह सलाह पसन्द आई। उसने अपने लड़के को बुलाकर कहा-"बेटा! में बड़ा सन्तुष्ट होऊँगा, यदि तुम दूर देश जाकर यश और धन कमाकर एक सज्जन व्यक्ति बन सको। बताओ, तुम कहाँ जाना चाहते हो?"

"मुझे काशी भेजिये।" शशिकेतु ने कहा। उसने सुन रखा था कि उस पुण्य क्षेत्र में महापापी मनमानी करते फिरते थे। काशी में पुजारी का कोई दूर का सम्बन्धी रहा करता था। पुजारी ने उसको एक चिट्ठी लिखकर शशिकेतु के हाथ दी। वह उसे लेकर काशी के लिए निकल पड़ा।

ऐसा लगता था, जैसे पुजारी की सलाह सफल हो गई हो; क्योंकि काशी में उसका सम्बन्धी शशिकेतु के बारे में अच्छा ही लिखता। उन चिठ्ठिओं को ले जाकर पुजारी ने व्यापारी को सुनाया। व्यापारी





और उसकी पत्नी, लड़के का आचरण सुधरता देख बड़े खुश हुए।

पर कुछ दिनों बाद, शशिकेतु के बारे में एक चिट्ठी आई। चिट्ठी क्या थी, बिजली की चोट थी। शशिकेतु का और शराबी जुआखोरों के साथ झगड़ा हो गया, और उन्होंने उसे मार दिया।

पुजारी जान गया कि शशिकेतु दूर नाकर भी न सुधरा था। पुजारी के लिए यह मुश्किल हो गया कि वह दुखद समाचार कैसे अपने मित्र व्यापारी के पास पहुँचाये। पर सत्य छुपाया भी नहीं जा सकता था। व्यापारी की पत्नी तो यूँही बीमार रहती थी। पुजारी ने आखिर, यह बात व्यापारी को एकान्त में कहनी चाही।

अपने लड़के की वार्ता सुनकर, व्यापारी को लकवा-सा मार गया। पर उसने आँसू न बहाये, न वह रोया ही। "मैं बहुत दिनों से सोचा करता था कि ऐसी घटना कभी न कभी घटेगी। आखिर घटी भी। दूर जाकर सुधर जायेगा, हमने सोचा: पर वह न सुधरा। वह सुधरनेवाला भी न था।" दुःख भरी आवाज में उसने कहा। फिर उसने पुजारी को ओर मुड़कर अपने कहा-"खैर, आप यह मेरी पत्नी को न जानने दीजिये। वह तो यूँही खटिया पकड़े हुई है। अगर यह बात सुनेगी तो प्राण छोड़ देगी। वह अधिक दिन न जी सकेगी। उसे कम से कम इसी ख़्याल में मरने दीजिये कि उसका लड़का परदेश में है, और अच्छा है। आप पहले की तरह कुछ चिट्ठियाँ लेकर, मुझे और मेरी पत्नी को सुनाया कीजिये, जैसे आपके सम्बन्धी ने लिखी हों।"

"अच्छा, मैं यही करूँगा, आप दुःखी न हों। मैं उस गृहिणी को कोई दुःख न होने दूँगा।" पुजारी ने कहा।

वह महीने में एक चिट्ठी स्वयं लिखकर उनके पास जाता-"जी! काशी से एक और चिट्ठी आई है। आपके लड़के ने खबर भेजी है कि वह अच्छा है। मेरे रिश्तेदार ने यह भी लिखा है कि आपके लड़के को राजा के दरबार में नौकरी मिलनेवाली है।" पुजारी ने कहा।

फिर एक बार जाकर उसने बताया-"आपका लड़का, इस वैशाख पूर्णिमा से नौकरी में लग रहा है।"

एक बार उसने बताया-"राजा ने आपके लड़के को बहुत बड़ा इनाम दिया है। उन्होंने यह भी कहा है कि उसका विवाह भी वे ही करवायेंगे।"

एक बार उसने कहा-"आपके लड़के को आप दोनों को देखने की इच्छा हो रही है। कह रहा है कि छुट्टी मिलते ही आ जायेगा।"

जब कभी पुजारी आता, तो व्यापारी और उसकी पत्नी सानन्द उसका स्वागत करते। जो कुछ वह कहता, वे बड़े ध्यान से सुनते। यद्यपि व्यापारी की पत्नी रोगी थी, पर पुजारी को देखकर इस तरह उठती, जैसे रोग यकायक ठीक हो गया हो।



पुजारी मन ही मन सोचता कि वह उतनी अच्छी गृहिणी को धोखा दे रहा था। पर जब वह उसकी झूठी चिट्ठी सुनकर खुश होती, तो वह सोचता-"मैं अच्छा काम ही कर रहा हूँ। उस गृहिणी की खुशी से अधिक कौन-सी चीज़ है!"

इस तरह चार वर्ष बीत गये। व्यापारी की पत्नी की बीमारी धीमे धीमे बढ़ती गई। वह हिल भी न पाती थी। हमेशा खटिया पर पड़ी रहती। उसे क्षय था। वैद्यों ने कह दिया कि वह अधिक दिन जीवित न रह सकेगी।

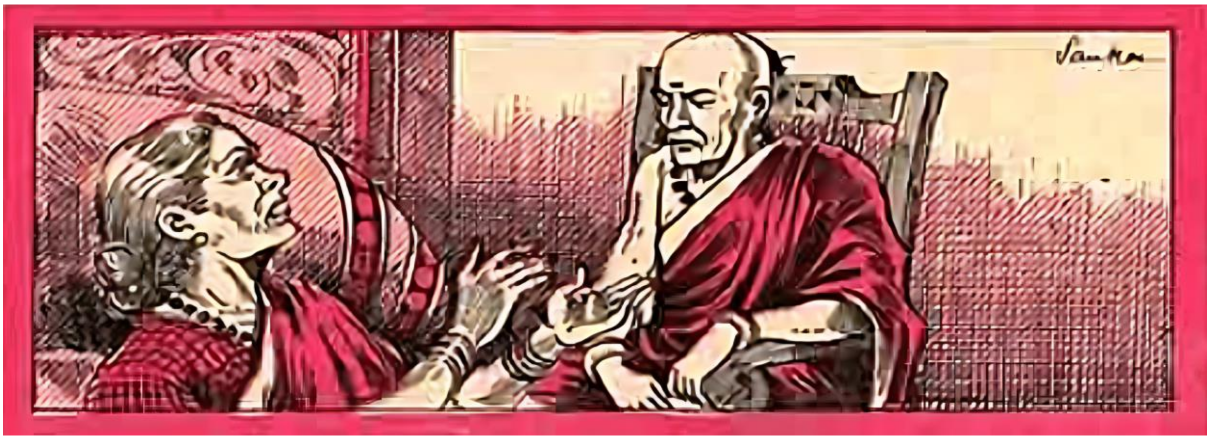
एक दिन पुजारी के पास ख़बर आई कि व्यापारी की पत्नी की हालत, अब और तब की थी। पुजारी तुरन्त उनके घर गया। व्यापारी घर में न था।

"मैं जा रही हूँ, आप उनका ख़्याल रखना।" व्यापारी की पत्नी ने पुजारी से कहा।

"यह क्या? आप भी क्या कह रही हैं? अपका लड़का, सुना है वापिस आ रहा है। यह अभी अभी मुझे मालूम हुआ है। काशी से कुछ यात्री आये हैं, उनके द्वारा मेरे सम्बन्धी ने ख़बर भिजवायी है। आप जल्दी ही अपने राशि से मिल सकेंगी।" पुजारी ने कहा।

रोगी ने दयनीय शक्ल बनाकर पुकारते हुए कहा-"यह बात बिल्कुल सच है, हम उस लोक में मिलेंगे। अचरज मत कीजिए। मैं बहुत दिनों से जानती हूँ कि शशि मर गया है। पर आपका काशी का सम्बन्धी बड़ा नेक आदमी है। हम उसका कर्ज नहीं चुका सकते। अगर उन्हें यह बात मालूम हो जाती तो, जाने उनकी हालत क्या होती? इतने दिन मैंने उनको यह बात नहीं बताई है। मेरे सामने आप शपथ लीजिये कि आप उन्हें यह नहीं बतायेंगे। नहीं तो में शान्तिपूर्वक न मर सकूँगी। जब तक वे जीवित हैं, उनको यह न पता लगे कि शशि मर गया है। यही मेरी इच्छा है।"

पुजारी को दुख न हुआ, बल्कि उसे बड़ा आनन्द हुआ। अगर आदर्श दाम्पत्य कहीं है तो यहाँ है। वे एक दुखद समाचार को आजीवन अपने हृदय में रखे रहे ताकि एक दूसरे को उसे सुनकर दुख न हो। उन दोनों की प्रशंसा करता हुआ पुजारी घर चला गया।





[हमने "भुवन सुन्दरी" में पढ़ ही लिया कि कैसे ट्रोय नगर के राजा वर्धन का लड़का मोहन, ग्रीक राजा प्रताप की पत्नी, भुवन सुन्दरी को उठा लाया था, और कैसे उसको वापिस ले आने के लिए ग्रीक सेनिकों ने जहाजों में आकर ट्रोय नगर का घेरा डाला था और कैसे काठ के घोड़े की सहायता से नगर में घुसकर, नगर को ध्वंस किया था। ट्रोय नगर पर हमला करनेवाले ग्रीक बीरों में रूपधर भी था। जब वह युद्ध के लिए जा रहा था तब यह भविष्यवाणी की गई थी कि वह बीस वर्ष तक स्वदेश वापिस न जायेगा। इन बीस वर्षों में से दस वर्ष ट्रोय नगर के युद्ध में ही बीत गये। अगले दस वर्षों में रूपभर को अनेक विचित्र अनुभव हुए। उन अनुभवों की कहानी हो हम अब वहाँ शुरू कर रहे हैं।]

रूपधर के जहाजों ने ट्रोय नगर को छोड़ा था कि प्रतिकूल हवा चलने लगी। जहाज़ों को जाना दक्षिण की ओर था और वे गये उत्तर की ओर। वे कुछ नहीं कर सके। कुछ दिनों बाद, वे इस्मरोस के पास पहुँचे। यहाँ पहुँचते ही वे नगर में घुस पड़े। इस नगर में किकोनियन रहा करते थे।

रूपधर की सेनाओं ने नगर पर हमला किया, और उसे खूब लूटा। सैनिकों ने नगर की स्त्री, पशु-सम्पत्ति आदि को आपस में बाँट लिया। "हमारा यहाँ से



जितनी जल्दी हो सके, चला जाना ही अच्छा है।" रूपधर ने अपने सैनिकों से कहा। पर सैनिकों ने उसकी न सुनी। क्योंकि वे नशे में थे। शहर में उनको बहुत शराब मिल गई थी। वह शराब सब ने खूब पी, वे पशुओं को मारकर उन्हें भूनकर खाने की तैयारी में लग गये।

इस बीच में वे किकोनियन, जो नगर छोड़ कर भाग गये थे, आसपास के गाँवों में गये, और असंख्य योद्धाओं को साथ लेकर वापिस आये। इनमें कई योद्धा ऐसे थे, जो ज़रूरत पड़ने पर रथ में चढ़कर युद्ध कर सकते थे, अन्यथा भूमि पर खड़े खड़े ही शत्रु का सामना कर सकते थे।

ये किकोनियन योद्धाओं ने सवेरे ही रूपधर के सैनिकों पर हमला किया। दोनों पक्ष के बीच बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। किकोनियनों की संख्या अधिक थी। ज्यों ज्यों सूरज चढ़ता जाता था, ग्रीक सैनिकों कौ शक्ति भी कम होती जाती थी। हर जहाज़ के छः ग्रीक सैनिक मारे गये। बाकी सैनिक जान बचाकर अपने जहाजों में भाग गये। उनके लिए कोई दूसरा रास्ता न था।

वे समुद्र में कुछ दूर गये थे कि आन्धी-झञ्झा चलने लगी। भूमि की ओर से और समुद्र की तरफ़ से घने मेघ आकाश को घेरने लगे। फिर देखते देखते रात भी हो गई। इस भयङ्कर तूफ़ान में, पाल भर गये और जहाज वायु की गति के साथ वह गये। शीघ्र ही, पाल फटकर चीथड़े हो गये।

रूपधर डरने लगा कि कोई भी जीता न बचेगा। उसने सैनिकों से कहा कि

पाल उतार दिये जायें, और चप्पुओं से खेकर, जहाज़ों को किनारे पर लगाया जाय। जहाजों के किनारे पर पहुँच जाने पर दो-तीन दिन तक ग्रीक सैनिक हथेली में प्राण रखे, इस प्रतीक्षा में रहे कि कब तूफ़ान बन्द होता है। उन्हें सूर्य का प्रकाश तक न दिखाई दिया।

तीसरे दिन, जब पूर्व में उन्होंने सूर्योदय देखा तो उनकी जान में जान आई। उन्होंने मस्तूल उठाकर नये पाल लगाये। बिना बहुत मेहनत के जहाज़ हवा के साथ चल दिये।

चार दिन इस तरह सफर करने के बाद वे मलिया पहुँचे। इस द्वीप को पार करके, उत्तर की ओर जाने से, रूपधर का स्वदेश इथाका पड़ता था। हवा का जोर ज़रा कम हो गया था। रूपधर ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि जहाज़ द्वीप को पारकर आगे चलें। परन्तु ठीक उस समय फिर तूफ़ान आया। और तूफान जहाज़ों को कहीं और ले गया।

नौ दिन नौ रात, तूफ़ान ने रूपधर के जहाज़ों से गेंद खेली। कई तरह की मुसीबतें झेलने के बाद दसवें दिन कहीं किसी किनारे पर पहुँचे। पर



रूपधर वहाँ अधिक समय तक न रह सका।

क्योंकि वहाँ के रहनेवाले ज्ञान फल खाते थे। वे खाने में स्वादिष्ट होते थे। उनमें न कोई गुठली होती थी, न कोई बीज ही। उनको खाने से आदमी को कोई गुज़री बात याद नहीं रहती थी। लोगों को ऐसा नशा आ जाता था, जैसे अफीम खा ली हो।

परन्तु रूपधर यह न जानता था। उसने और उसके सैनिकों ने किनारे पर खाना पकाकर खाया। फिर रूपधर ने तीन

सैनिकों को बुलाकर कहा-"तुम लोग जरा घूम घाम कर देख कर आओ, यहाँ के रहनेवाले कैसे हैं?"

वहाँ के लोगों ने उन तीन ग्रीक सैनिकों का कुछ न बिगाड़ा, पर उन्हें भी उन्होंने वह फल दिया, जिसे वे स्वयं खा रहे थे। उन तीनों ने वे फल खाये। उसे खाते ही रूपधर के वे सैनिक अपना काम भूल गये और मज़ा उड़ाने लगे।

जब बहुत देर तक सैनिक वापिस न आये, तो रूपधर स्वयं कुछ सैनिकों को साथ लेकर गया। तब उसको सारी बात मालूम हुई। वहाँ के लोगों ने उसे भी फल खाने को दिया। पर रूपधर ने खाया नहीं। जिन सैनिकों ने उसे खाया था, उनको जोर-जबर्दस्ती से जहाज़ तक ले जाना पड़ा। तब भी वे रूपधर से कह रहे थे-"हम तुम्हारे साथ नहीं आयेंगे, यहीं रहेंगे। हमें यहाँ बहुत अच्छा लग रहा है।"

रूपधर ने उनको रस्सी से बन्धवा दिया। उसने सोचा कि वहाँ एक क्षण रहना भी अक्लमन्दी का काम न था। उसने जहाजों को आगे ले जाने की आज्ञा दी। जहाज



कुछ दिनों तक समुद्र में चलते रहे। एक दिन रात को वे अनजाने ही किनारे पर पहुँचे।

ग्रीक न जानते थे कि वे कैसी जगह पर पहुँचे थे। क्योंकि आकाश में चाँद था, पर उसको बादलों ने बुरी तरह घेर रखा था। यही नहीं, कोहरा इतना घना था कि वे जान न पाते थे कि आगे क्या है। बाद में सब कुछ जाना जा सकता है, यह निश्चय कर, ग्रीक सैनिकों ने मस्तूलों पर से पाल उतार दिये। जहाज़ों पर से उतर आये और सब के सब रेत पर घोड़े बेचकर सो गये। थकान की गहरी नींद थी।

वे सवेरे उठे। वह जगह द्वीप जैसी थी। वे इधर उधर घूमे। वहाँ के प्रकृति-सौन्दर्य को देखकर वे बहुत खुश हुए। उस द्वीप में कितने ही तरह के फलों के वृक्ष थे। कितनी ही अंगूरों की बेलें थी। ज़मीन अच्छी थी और उपजाऊ भी। पर वहाँ खेती न होती थी। पानी की भी कमी न थी। इसलिए बिना खेती के ही वहाँ तरह तरह का अनाज आसानी से पैदा किया जा सकता था।





ग्रीक जहाज छोड़कर बहुत दूर न गये थे कि उनको जंगली बकरियाँ दिखाई दी।

चे तुरन्त जहाजों की ओर भागे, और अपने धनुष-बाण, भाले वगैरह ले आये। उनकी मदद से उन्होंने कई बकरियाँ मारी और उन्हें आग में भूनकर दिन भर खाते रहे। रूपधर के पास बारह जहाज़ थे। और हरेक जहाज़ के हिसाब में नौ नौ बकरियाँ पड़ीं।

उस दिन वे जहाज़ छोड़कर न गये। पर कहीं दूरी पर कुछ ऐसे चिन्ह दिखाई दिये, जिनसे यह अन्दाज लगाया जा सकता था कि वहाँ मनुष्य रहते थे। शाम को उन्हें कहीं कहीं रसोई घर का धुआँ भी दिखाई दिया। भेड़ बकरी की आवाज़ भी उन्हें सुनाई दी।

रूपधर ने सवेरा होते ही अपने सैनिकों को बुलाकर कहा-"मैं अपनी नौका इस तरफ ले जाकर देखूँगा कि इस द्वीप में रहनेवाले लोग सभ्य हैं कि नहीं, उनका कोई समाज है कि नहीं। मेरे बापिस आने तक बाकी लोग और बाकी जहाज यहीं रहे। कहीं जाना नहीं।"

रूपधर के नौका के थोड़ी दूर जाने पर एक ऊँचे टीले पर एक गुफा दिखाई दी। उसके ऊपर बेलें थीं। उसमें चारों ओर चारदिवारी-सी बनी हुई थी। उसमें बड़े बड़े पत्थर, और पेड़ों के तने रख दिये गये थे।

रूपधर ने अपनी नौका को ठीक गुफा के सामने खड़ा किया। अपने सैनिकों में से बारह बहादुर सैनिकों को लेकर, बकरी के चमड़े के थैले में शराब लेकर वह गुफा की ओर चल पड़ा।

वह शराब अजीब थी। इस्मरोस पर जब उसने हमला किया था, तब उसने एक

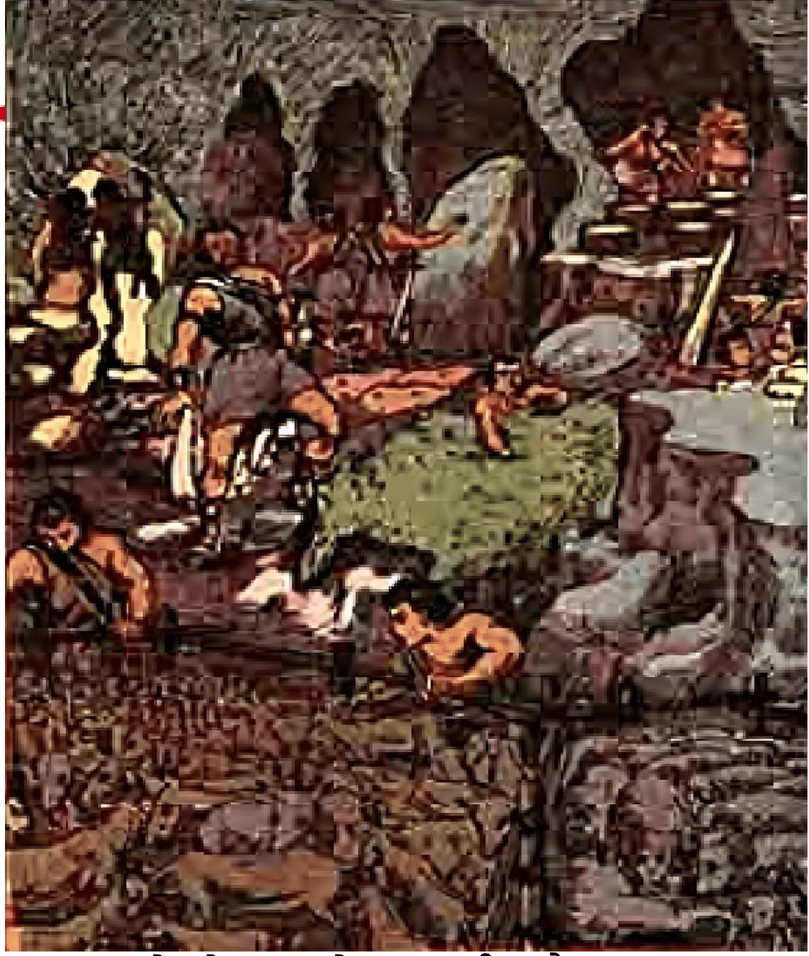
पुजारी, और उसकी पत्नी, बाल-बच्चों को न मारा था; छोड़ दिया था। उसके बदले में उस पुजारी ने बकरी के चमड़े के थैलों में शराब भरकर उसको भेंट दी। सोना चाँदी भी दी। वह पुजारी इस शराब को बीस गुने पानी में मिलाकर पिया करता था। तब भी उसकी सुगन्ध और मिठास खूब बनी रहती।

रूपधर और उसके सैनिक जल्दी ही गुफा में पहुँचे। परन्तु गुफा में कोई न था। वह बहुत बड़ी गुफा थी। उसमें, कई बाड़े थे, जिनमें उम्र के अनुसार भेड़ और बकरियों बँधी हुई थीं। एक तरफ दूध की मलाई बिछी हुई थी। कितने ही घड़ों में दूध भरा था।

"इस मलाई को लेकर, आओ, हम अपने रास्ते पर चले जायें।" रूपधर के सैनिकों ने कहा।

"हमें यहाँ कोई रोकनेवाला नहीं है, आओ, हम इन सभी भेड़-बकरियों को भी साथ ले जायें।" कई और सैनिकों ने कहा।

पर रूपधर ने उनको यह सब करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया था।



सब ने पेट भरके मलाई वगैरह खाई। फिर वे उस गुफा में रहनेवाले आदमी की प्रतीक्षा करते बैठे रहे।

आखिर वह आदमी आया। पहिले तो ग्रीक सैनिकों ने उसे न देखा। घोर गर्जन करती हुई-सी कोई चीज़ आई। उसके थोड़ी देर बाद असली आदमी ने झुककर गुफा में प्रवेश किया। उसे देखकर ग्रीक सैनिक इस तरह भागे, जिस तरह कि बिल्ली को देखकर चूहे इधर उधर भागते हैं।

वह मनुष्य ताड़ के पेड़ के बराबर ऊँचा था। उसकी एक ही आँख थी।

उस आदमी ने एक बड़े भेड़ के झुण्ड को अन्दर हाँका। भेड़ खूब मुटियायी हुई थीं। फिर उसने एक बड़े पत्थर को उठाकर गुफा के दरवाजे को बन्द किया। वह पत्थर इतना बड़ा था कि बीस जोड़ी बैल भी उसे न हिला सकते थे। फिर उसने बकरियों का दूध दुहा।

वह आदमी भाललोचन जाति का था। उस जाति के कई लोग वहाँ थे। वे समाज में नहीं रहते। वे अलग अलग एक एक गुफा में रहते हैं। एक को दूसरे की फिक्र नहीं होती।

इस जातिवाले खेती नहीं करते। क्योंकि जमीन बहुत उपजाऊ थी, इसलिए बिना खेती के बाली जैसे कई अनाज पैदा हो जाते थे। ये राक्षस साल में एक बार फसल काट लेते हैं। नहीं तो, वे दिन भर भेड़ बकरियाँ चराते रहते हैं। अच्छी घास खाकर वे भी खूब मोटी हो जाती हैं।

ये राक्षस यद्यपि पीढ़ी दर पीढ़ी समुद्र के किनारे रहते आये हैं, तो भी न उनको नाव बनानी आती है न जहाज़ ही। उनको सभ्यता छू तक नहीं गई है। वे निरा असभ्य और बर्बर जीवन व्यतीत करते हैं।

गुफा में भाललोचन ने आधा दूध लेकर जमा दिया और बाकी शायद पीने के लिए उसने एक घड़े में डाल दिया। फिर उसने आग जलाई। आग के प्रकाश में उसे ग्रीक दिखाई दिये।

राक्षस ने अपनी आँख को इधर उधर घुमाकर पूछा-"कौन हो तुम?" उसकी आवाज़ से सारी गुफ़ा गूँज उठी।

(अभी और है)





बग़दाद शहर में तीन अन्धे भिखारी मिलकर रहा करते थे। वे रोज़ भीख माँगते, खाने-पीने के बाद जो पैसे बचते, उन्हें अपने घर में सुरक्षित रखते। इस तरह उनके पास बारह सौ दिरमें जमा हो गई।

एक दिन उनमें से एक ने, एक गली में घुसकर, एक घर का दरवाजा खटखटाया।

अन्दर से घर के मालिक ने कहा-"कौन है?" परन्तु अन्धे ने कुछ न कहा। फिर उसने दरवाज़ा खटखटाया। वह जानता था कि अगर वह कहेगा कि वह भिखारी है तो घरवाले बिना दरवाजा खोले ही कह देंगे-"जाओ, कुछ नहीं है।"

घर के मालिक ने फिर पूछा-"कौन कौन है?" और जब कोई जवाब न मिला तो उसने दरवाजा खोला। एक अन्धे को देखकर पूछा-"कौन हो तुम?"

"....अन्धा हूँ, बाबू, दया कीजिये।" भिखारी ने कहा।

तुरन्त घर के मालिक ने उसे अपना हाथ बढ़ाकर कहा-"मेरा हाथ पकड़ कर अन्दर आओ।" भिखारी ने सोचा कि उसका भाग जग गया था। वह उसके साथ मकान की तीसरी मञ्जिल तक गया।

"यहाँ बैठकर तुम यह बताओ कि तुम्हें क्या चाहिये।" घर के मालिक ने कहा।

"मैं भूख से मरा जा रहा हूँ। या तो थोड़ा भोजन दीजिए नहीं तो दो-चार पैसे।" भिखारी ने कहा।

"तो यह बात है? यहाँ कुछ नहीं है। जाओ।" घर के मालिक ने कहा।

".... क्या इसीलिये आप मुझे इतनी सीढ़ियाँ चढ़ाकर लाये थे? यह अगर नीचे ही कह देते तो?" भिखारी ने पूछा।

श्री विनोद कुमार

"..... जब पूछा था 'कौन?' तो क्यों नहीं ठीक जवाब दिया था?" घर के मालिक ने पूछा।

"तो आप चाहते क्या हैं?" भिखारी ने पूछा।

"यही कि तुम्हें देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है।" घर के मालिक ने कहा।

"यह बात है तो मुझे नीचे तक पहुँचाइये।" भिखारी ने कहा।

"क्या मेरा यही काम है? जा जा।" घर के मालिक ने डाँट कर कहा।

भिखारी ने लम्बी साँस छोड़ी। इधर उधर खोजता सीढ़ियों के पास गया। जब वह नीचे उतर रहा था तो उसका पैर फिसल गया। चोट लगी। वह जैसे तैसे, कराहता, गली में चला गया।

ठीक उसी समय, बाकी अन्धे भिखारी भी उसी गली में आये। उसको कराहता सुन उसके पास जाकर उन्होंने पूछा-"क्यों? क्या बात है?"

उसने अपनी कहानी बाकी दो मित्रों को सुनाई और कहा-"आज तो मैं घूम-फिर नहीं सकता। अगर तुम्हारे



पास कुछ पैसे हो तो दो, में कुछ खा-पी लूँगा।"

"आज तो हमारे भाग्य भी खराब कुछ नहीं मिला। आओ, घर चलें।" दोनों अन्धों ने कहा।

इन भिखारियों की बातचीत घर के मालिक ने सुनी। वह एक बड़ा चोर था। वह भी उस भिखारी के पीछे पीछे चलने लगा, जो उसके घर आया था। उनकी सब बातें सुनीं। और उनके साथ उनके घर भी गया। जल्दी ही भिखारी अपने घर पहुँचे। ताला खोलकर अन्दर गये, और झट फिर दरवाजा बन्द कर दिया। परन्तु इस बीच चोर भी अन्दर घुस गया।

अन्धों ने सन्दूक खोल कर अपनी सारी सम्पत्ति की जाँच-पड़ताल की। बारह सौ चान्दी के दिरमें थी। उसमें से एक लेकर एक अन्धा, रोटी-साग खरीद लाया। तीनों बैठकर खाने लगे। उनके साथ चोर भी खाने लगा।

चार आदमियों का चबाना सुनाई पड़ रहा है।" एक अन्धे ने कहा। तुरन्त वे तीनों चोर पर लपके और उसको मारते-पीटते चिल्लाये-"चोर, चोर।"



जब चिल्लाना सुनकर पाँच-दस आदमी इकट्ठे हो गये तो चोर भी आँखें मूँदकर इस तरह बैठ गया, जैसे वह भी एक अन्धा हो और कहने लगा-"भाई, हमें कोतवाल के पास ले जाइये। उन्हें एक जरूरी बात बतानी है।"

तुरन्त लोग चारों अन्धों को कोतवाल के पास ले गये। "कौन हैं ये? यहाँ क्यों आये हैं?" कोतवाल ने पूछा।

"बाबू! हम तीनों अन्धे भिखारी हैं। कोई चोर हमारे घर में घुसकर हमारी पसीने की कमाई को चुराने की सोच रहा है। एक अन्धे ने कहा।

"वह चोर कौन है? सच बोलो।" कोतवाल ने पूछा।

"बिना कोड़े की मार के क्या चोर सच बतायेंगे, बाबू?" आँखें मूँदे हुए चोर ने कहा।

"यही बात है तो जब तक यह सच न बताये इसे कोड़े मारो।" कोतवाल ने कहा।

अभी दो कोड़े भी न लगे थे कि चोर ने आँख खोलकर कहा-"हमें माफ कीजिये, हुजूर! में सच कह दूँगा। हमने अन्धे होने का बहाना कर, शहर भर में घूम घूम कर, बारह सौ दिरमें भीख में पाई। क्योंकि मैंने सच कह दिया है, इसलिये मेरा हिस्सा मुझे दिलवा दीजिये। इन्हें भी कोड़े लगवाइये, ये सच कह देंगे।"

कोतवाल ने उसकी बात का विश्वास कर लिया और उसको तीन सौ दिरमें देकर भेज दिया। फिर उसने उन अन्धों को खूब पिटवाया। पर उन्होंने अपनी आँखें न खोलीं। जब वे बेहोश होकर गिर गये तो कोतवाल ने उन्हें छोड़ दिया और उनका बहुत दिनों से जमा किया हुआ धन उसने स्वयं हथिया लिया।





पाप - विमोचन

कुमार नगर में विष्णुमूर्ति नाम का ब्राह्मण रहा करता था। उसका एक लड़का था, जिसका नाम देवभूति था। उसने छुटपन में ही चार वेद और छः शास्त्र पढ़े थे। परन्तु क्यों कि उसने बहुत पाप किये थे, इसलिये वह ब्रह्मराक्षस हो गया।

राक्षस होने के बाद देवभूति को ज्ञान-प्राति हुई। पाप से विमुक्त होने के लिए उसने किसी अच्छे व्यक्ति को विद्यादान करना चाहा। इसलिए वह जङ्गल में एक पीपल के पेड़ पर रहने लगा और रोज़ वेद पारायण करने लगा।

यद्यपि वह पण्डित था, पर चूँकि वह राक्षस हो गया था, इसलिये उसमें ब्रह्मराक्षस के भी लक्षण थे। जो जन्तु जानवर उस पेड़ के नीचे आते, वह उन्हें मारकर खा जाता। अगर कोई मनुष्य भटका भटका आता, तो उनकी विद्या की परीक्षा करता। वे डर कर भाग जाते। आसपास के लोगों को पता लग गया कि उस वृक्ष पर एक ब्रह्मराक्षस रहा करता था।

देवभूति के राक्षस हो जाने के कुछ दिनों बाद, कुमार नगर में एक युवक आया। उसका नाम था गोनर्दीय। वह काशी का रहने वाला था। उसने काशी में सकल शास्त्रों का अध्ययन किया था और वह नई विद्याओं को सीखने के लिए निकला था। कुमार नगर के पण्डितों ने उसकी परीक्षा कर के कहा-"भाई, हम तुमसे बड़े पण्डित नहीं हैं। इस नगर में तुम्हें कोई नई विद्या नहीं सिखा सकता। फिर भी ब्रह्मराक्षस के रूप में, एक व्यक्ति जङ्गल में एक पेड़ पर निवास कर रहा है। शायद वह तुम्हारी मदद कर सके।"

श्री आर. एस. माधुर

तब मैं वहाँ ही जाऊँगा।" गोनर्दीय ने कहा।

"अरे, फिजूल मारे जाओगे। क्या तुम अब कम जानते हो?" पण्डितों ने कहा।

परन्तु गोनर्दीय ने उनकी एक न सुनी, वह जङ्गल की ओर चल पड़ा। वह उस घने जङ्गल में कई दिनों तक भटकता रहा। एक दिन उसे दूरी पर वेद पठन सुनाई दिया। गोनर्दीय समीप गया। पीपल के पेड़ को देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसके नीचे बैठकर, वह भी राक्षस के साथ पठन करने लगा।

ब्रह्मराक्षस ने तुरत गोनर्दीय के सामने कूदकर पूछा-"कौन हो तुम? मेरे साथ वेद पढ़ने का साहस?"

"क्षमा कीजिये। मैं आपकी बराबरी नहीं कर रहा हूँ। आपके पास नये शास्त्रों को जानने के लिए आया हूँ। नाम गोनर्दीय है। मैं काशी का रहने वाला हूँ।" गोनर्दीय ने सविनय कहा।

ब्रह्मराक्षस बड़ा खुश हुआ। "यह बात है भाई! पर में कई दिनों से इस प्रतीक्षा में था कि कोई ऐसा व्यक्ति मेरे पास आये जिसे मैं विद्या दान कर सकूँ और मैं अपने पापों से



विमुक्त हो सकूँ। तुम क्या क्या जानते हो? यह बताओ।" ब्रह्मराक्षस ने पूछा।

गोनर्दीय ने वे सब विद्यायें बताईं, जिन्हें वह जानता था। "मैं ऐसी कोई विद्या नहीं जानता, जो तुम न जानते हो। क्या किया जाये?" ब्रह्मराक्षस ने कहा।

गोनर्दीय भी बड़ा निराश हुआ। पर इतने में ब्रह्मराक्षस ने कहा-"देखो भाई, मैं तुम्हे कन्यादान देता हूँ। तुमसे अधिक योग्य ब्रह्मचारी कहीं न मिलेगा। जो में कहूँगा वह करोगे?" ब्रह्मराक्षस ने पूछा, और गोनर्दीय तुरन्त मान गया।

"यहाँ से दक्षिण की ओर जाओ। जयपुर नाम का नगर आयेगा। वहाँ के राजा की एक लड़की है, जिसका नाम मदयन्ती है। वह सुन्दर है, विदुषी है। उसका पिता उसके विवाह के लिए प्रयत्न कर रहा है। मैं उसे जाकर पकडूँगा.... तुम्हारे आते ही मैं उसे छोड़ दूँगा। तब राजा, तुम्हारे साथ उसका विवाह कर देगा और मैं पाप से विमुक्त हो जाऊँगा।" राक्षस ने कहा।

इधर जयपुर में, राजा ने कई राजकुमारों के चित्र मँगवाये, ताकि मदयन्ती अपना पति चुन सके। उनको मदयन्ती के पास भेज दिया। ठीक उसी समय, ब्रह्मराक्षस ने मदयन्ती में प्रवेश किया। यह दासियों को उठाकर फेंकने लगी, और बड़ा अट्टहास करने लगी।

देखते देखते राजमहल में कोहराम मच गया। जो सैनिक मदयन्ती को पकड़ने गये, उसने उनको एक मुक्के में समाप्त कर दिया। भोजन भी दूर फेंक दिया।

राजा ने नगर के भूत वैद्यों को बुलवाया। उन्होंने मन्त्र पढ़े। तन्त्र किये। भस्म फेंका, पर वे मदयन्ती के पास न जा



सके। जिन्होंने पास जाने का साहस किया भी, या तो उनके सिर फूट गये, नहीं तो टाँगें तोड़ दी गई।

विचारा राजा पागल-सा हो गया। उसके एक ही लड़की थी। इकलौती। शादी करने की तैयारियाँ हो रही थीं कि उसे भूत चढ़ गया। अगर यह बात देश विदेश में फैल गई तो उससे कोई शादी न करेगा।

"राजकुमारी मदयन्ती का भूत जो उतार देगा, उसके साथ न केवल उसका विवाह ही होगा, अपितु उसका पट्टाभिषेक भी किया जायेगा।" राजा ने सर्वत्र यह घोषणा करवाई। यह घोषणा सुन दूर देश से भूत वैद्य आये। पर राजकुमारी के हाथ वे खूब पिटे। वे कुछ न कर सके।

इस बीच, गोनर्दीय जयपुर पहुँचा। राजकुमारी की स्थिति के बारे में मालूम कर उसने राजा से कहा- "महाराजा! मैं उस भूत को छुड़ा सकता हूँ, जो आपकी लड़की को इस समय तङ्ग कर रहा है।"

उस नवयुवक को देखकर, राजा को दया आई। उसने कहा: "नहीं भाई !



यह काम तो बड़े बड़े मान्त्रिक नहीं कर पाये हैं। तुम बच्चे हो। यह काम तुम्हारे बस का नहीं है।"

गोनर्दीय ने हँसकर कहा-"महाराज! जो भूत मेरे आने पर न जाये, क्या उसे और भगा सकते हैं?" राजा को उस युवक पर एतबार हो गया। उसने सैनिकों के साथ, उसको राजकुमारी के पास भेज दिया।

एक कमरे में, राजकुमारी बाल फैलाये, भयङ्कर शक्ल बनाये खड़ी थी। उसने गोनर्दीय को देखकर गर्जन किया।

तुरन्त गोनर्दीय ने हाथ जोड़कर यों पढ़ना शुरू किया।

भूतेन्द्र तब शिष्यो गोनर्दीयाभिदानफ

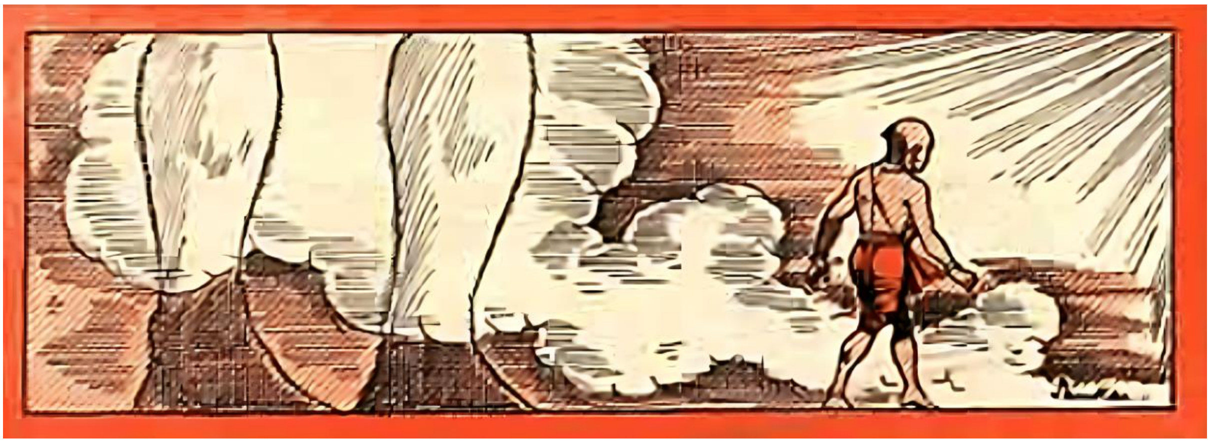
पूर्यादित वरं देहि, देवभूते नमो नमः

(भूत राजा! मैं तुम्हारा शिष्य हूँ। मेरा नाम गोनर्दीय है। पहले बताया हुआ वर दो। देवभूति को मेरे नमस्कार।)

गोनर्दीय का यह कहना था कि मदयन्ती के मुँह से भयङ्करता इस प्रकार चली गई, जैसे किसी ने उसको पोंछ दिया हो। वह बेहोश होकर वहीं गिर गई।

गोनर्दीय की आज्ञा पर सैनिकों और दासियों ने मदयन्ती को एक पलङ्ग पर लिटा दिया। उसकी सेवा-शुश्रूषा करने लगे। वह फिर धीमे धीमे भोजन करने लगी और दो सप्ताहों में बिल्कुल ठीक हो गई।

राजा ने अपनी घोषणा के अनुसार गोनर्दीय का मदयन्ती के साथ विवाह कर दिया। उसका बाद में पट्टाभिषेक भी हुआ। फिर किसी ने, जङ्गल में, पीपल के पेड़ के पास वेद पठन न सुना। देवभूति पाप से विमुक्त हो गया और उसका इस तरह ब्रह्मराक्षस का रूप भी समाप्त हो गया।



CHANDAMAMA (Hindi) AUGUST 1957 Regd. No. M. 5452



रूपधर की यात्राएँ